आई एस एस एन : 0972-169X
पंजीयन क्रमांक 70269/98 के अंतर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल : 11360/2002

विज्ञान प्रसार की मासिक पत्रिका

# ड्रीम 2047

अक्टूबर 2002 खण्ड 5 अंक 1

# विज्ञान प्रसार समाचार

## ढाका में दक्षेस पुस्तक मेला

विज्ञान प्रसार ने, दक्षेस देशों के राष्ट्रीय प्रकाशन संघों का प्रतिनिधित्व करने वाली ‘दक्षेस पुस्तक विकास परिषद’ के तत्वावधान में ढाका, बांग्लादेश में 26 से 29 सितम्बर 2002 तक पुस्तक मेले में भाग लिया। यह पुस्तक मेला ढाका स्थित शिल्पकला अकादेमी परिसर में बांग्लादेश प्रकाशक परिषद ने आयोजित किया था। पुस्तक मेले का उद्घाटन पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ बांग्लादेश की संस्कृति विभाग की राज्यमंत्री माननीया बेगम सेलीमा रहमन ने किया था। इस मेले में बांग्लादेश, भारत, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका के प्रकाशकों ने हिस्सा लिया। मेले में भारत से विज्ञान प्रसार और प्रकाशन विभाग, भारत सरकार सहित सत्रह प्रकाशकों ने भाग लिया। बांग्लादेश के विदेशमंत्री माननीय एम. मोरशेद खान ने समापन समारोह की शोभा बढ़ाई। पुस्तक मेले में आए दर्शकों ने विज्ञान प्रसार की पुस्तकों को बहुत सराहा, साथ ही विदेशी प्रकाशकों ने भी विज्ञान प्रसार के प्रकाशनों में रुचि दिखाई। इस मेले में यह अनुभव हुआ – कि दक्षेस देशों में विज्ञान प्रसार के प्रकाशनों के प्रसार की काफी संभावनाएं हैं।

बांग्लादेश की संस्कृति राज्य मंत्री माननीया बेगम सेलीमा रहमन को विज्ञान प्रसार प्रकाशन भेंट करते हुए श्री वी.के. जोशी तथा डॉ. सुबोध महंती

## इस अंक में

संपादकीय

- आचार्य जगदीश चन्द्र बसु
- अदरक : एक खुशबूदार मसाला
- डिजिटल टेलीविजन
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां
- प्रोफेसर आशीष दत्ता से साक्षात्कार

## उन्नीसवीं सदी के बंगाल में लोकप्रिय विज्ञान लेखन

विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुए लोकप्रिय विज्ञान लेखन का प्रलेखन करने के प्रयासों के अन्तर्गत विज्ञान प्रसार ने, ‘साइंस कम्युनिकेटर फोरम’ कोलकता को बांग्ला भाषा में हुए लोकप्रिय विज्ञान लेखनों के लिए एक परियोजना स्वीकृत की थी। इससे पहले हिन्दी में विज्ञान लेखन संबंधी ऐसी ही एक परियोजना विज्ञान परिषद प्रयाग पूरी कर चुका है। बांग्लादेश में इस परियोजना के लिए सन् 1818 से 1860 तक की अवधि निर्धारित की गई थी। चुने हुए लेखों तथा अन्य रचनाओं का एक संकलन, विस्तृत भूमिका के साथ कलकत्ता में 24 अगस्त 2002 को, कलकत्ता, जाधवपुर और कल्याणी विश्वविद्यालयों के भूतपूर्व उपकुलपति प्रोफेसर सुशील मुखर्जी ने विज्ञान प्रसार को

प्रो. एस.के. मुखर्जी, 24 अगस्त 2002 को कोलकाता में डॉ. एस. महंती को पाण्डुलिपि भेंट करते हुए। साथ में हैं डॉ. अमित चक्रवर्ती और प्रो. एस.एस. रे (बैठे हुए)

शेष पृष्ठ ......... 13 पर जारी

...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक...

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से रैक्मो प्रेस प्रा. लि., सी–59, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस–I, नई दिल्ली–110 020 द्वारा मुद्रित
सम्पादक : डॉ. विनय बी. काम्बले

# नयी दवाएं कितनी सार्थक

हाल ही की एक समाचार–रिपोर्ट के अनुसार, बुखार के लिए प्रायः डॉक्टरों द्वारा लिखी जाने वाली दवा निमेसुलाइड के गंभीर साइड–इफेक्ट पाये गये हैं। इस दवा के सेवन से विशेषकर बच्चों के यकृत (लीवर) में विकार पैदा हो सकते हैं। इस वर्ष के शुरू में इसके जनक बोएरिन्गर ने स्पेन और फिनलैंड से इसे हटा लिया था। रोचक बात तो यह है कि कनाडा, अमेरिका, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया में इसके उपयोग के लिए इस दवा को कभी लाइसेंस नहीं दिया गया। हालांकि भारत में इसको बुखार और दर्द निवारक के रूप में बढ़चढ़कर प्रोत्साहित किया गया है। यह रिपोर्ट आगे कहती है कि यहां के अधिकांश डॉक्टर जोर देते हैं कि इस बारे में अभी भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्हें इस दवा के खतरे के बारे में बहुत कम जानकारी है। ऐसा इसलिए है कि दवाओं पर किये गये अधिकांश अध्ययन स्वयं दवा कम्पनियों द्वारा ही प्रायोजित होते हैं। एक शिशु विशेषज्ञ का मानना है कि गंभीर यकृत विषाक्तता से पीड़ित एक बच्चा उनकी क्लिनिक पर आया और उसके बाद उसकी मृत्यु हो गयी। यह संभव है कि वह इसी दवा की प्रतिक्रिया (रिएक्शन) का शिकार हुआ हो और इस कारण उसकी मृत्यु हुई हो। जो भी हो, यह बात वैज्ञानिक रूप से सिद्ध नहीं हो सकी, क्योंकि यकृत की बायोप्सी नहीं की जा सकी। इस शिशु विशेषज्ञ ने जोर दिया है कि दवाओं की गहन जांच तो होनी ही चाहिए। यूरोपीय संघ की चेतावनी के बाद अब भारतीय औषधि नियंत्रक ने इसके साइड–इफेक्ट और जोखिम के बारे में पता लगाने के लिए इसकी समीक्षा करने का आदेश दिया है।

वस्तुतः, ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि एक अप्रचलित एवं हानिकारक क्षमता वाली दवा को हमारे यहां खपाया गया है। इसके अलावा एक दूसरा महत्वपूर्ण उदाहरण एनालजिन का है जो रक्तचाप, गुर्दा और यकृत पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है अथवा एलर्जी उत्पन्न कर सकती हैं। तब, क्यों इस प्रकार की दवाएं निरंतर लिखी जाती हैं और बाजार में खुलेआम उपलब्ध हैं? वास्तव में, यह दवा कम्पनियों द्वारा दवा को बढ़चढ़कर प्रोत्साहित करने और बाजार रणनीतियों का परिणाम है। निरपवाद रूप से, प्रत्येक कम्पनी अपने द्वारा निर्मित और प्रोत्साहित दवा को अपनी प्रतिद्वंद्वी कम्पनियों पर श्रेष्ठता सिद्ध करने के समर्थन में अपने ही द्वारा कराई गयी अध्ययन–रिपोर्टों का हवाला देती हैं। इस प्रक्रिया में कुछ गलत सूचनाएं प्रसारित हो जाती हैं, जिसके बाद डॉक्टर उसको नुस्खों में लिखना शुरू कर देते हैं, और धीरे–धीरे वह दवा अनुमति के बगैर किसी भी दवा की दूकान के काउंटर पर आसानी से मिलनी शुरू हो जाती है।

हमें प्रायः यह विश्वास दिलाया जाता है कि किसी रोग के कोई विशेष लक्षण देखे जाने पर कोई विशिष्ट दवा लेना काफी सुरक्षित होता है। हम दवा की दुकानों पर इस प्रकार की दवा के लिए आग्रह करते हैं। यह निमेसुलाइड, एनालजिन या कोई एंटीबायोटिक भी हो सकती है। इस तथ्य के बावजूद कि बिना किसी चिकित्सक के प्रेस्क्रिप्शन (नुस्खे) के दवा के काउंटर से इस प्रकार की दवाओं की बिक्री की अनुमति नहीं है, हम उस दवा को लेने का आग्रह रखते हैं। औषधि विक्रेता भी हम लोगों को इस दवा के साइड–इफेक्ट के बारे में बिना बताये खुशी–खुशी दवाएं देकर अनुग्रहीत करते हैं। औषधि विक्रेताओं की सहायता से स्व–चिकित्सा का सहारा लेकर क्या हम अपने ऊपर अप्रचलित या हानिकारक दवाओं का प्रयोग करके दवा कंपनियों को लाभ पहुंचाते हुए अपनी समस्या को और जटिल नहीं बना रहे हैं?

समाचार पत्रों या अन्य माध्यमों में तत्काल आराम पहुंचाने वाले चिकित्सा और सौन्दर्य प्रसाधनों से संबंधित लुभावने विज्ञापनों से हमें प्रभावित नहीं होना चाहिए। तत्काल आराम पहुंचाने वाली इन दवाओं के प्रभाव और उद्गम के बारे में कोई नहीं जानता। गंजेपन को दूर करने वाले, आंखों के नीचे के काले घेरे से छुटकारा दिलाने वाली, जुकाम और सिर दर्द को चुटकी बजाते ही गायब करने का दावा करने वाली दवाओं के विज्ञापन आम हो गये हैं। दवा की दुकानों से ऐसी कई दवाएं भी बेची जाती हैं जो तनाव, मधुमेह, कोलेस्ट्रॉल और अति रक्तदाब जैसी जीवन को जाखिम में डालने वाली स्थितियों से सुरक्षा प्रदान करने का झूठा दावा किया जाता है। सिर्फ दवाएं ही नहीं बल्कि चिकित्सकीय प्रक्रियाओं को भी हानिकारक होने के बावजूद विज्ञापनों के माध्यम से प्रोत्साहित किया जाता है। मुद्दे की बात यह है कि हमारे देश में सौन्दर्य प्रौद्योगिकियों का काफी गहन विपणन किया जा रहा है। पतला होने की टेक्नोलॉजी भी इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण है।

वास्तव में, यह महत्वपूर्ण है कि मरीज दवाओं को सुरक्षित व जिम्मेदार ढंग से उपयोग कर सकने तथा दवाओं के अनावश्यक उपयोग तथा उससे संबंधित जोखिम को कम करने के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकें। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह उत्पादकों, चिकित्सकों तथा फार्मासिस्ट्स की संयुक्त जिम्मेदारी है। दवाओं की उपयुक्त खुराक, विपरीत लक्षण तथा इतर–प्रभाव के बारे में जानकारी पैकेट पर प्रदर्शित होनी चाहिए। कानूनी तौर पर आवश्यक जानकारी के लिए दवा के साथ दिये जाने वाले सूचना–पत्रक ऐसी भाषा में दिये जाने चाहिए जो आसानी से समझ में आ सके। उपभोक्ता संगठनों, चिकित्सकों, फार्मासिस्टों, सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनों को एक साथ मिलकर यह कार्य करना चाहिए तथा विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को इस तरीके से समन्वित करना चाहिए ताकि जन–सूचना–प्रणाली कार्यक्षम हो सके। वर्ल्ड हैल्थ ऑर्गनाइज़ेशन औषधि–सुरक्षा पर निष्पक्ष यथार्थ आंकड़े प्रकाशित करता है। जनता को इसकी प्राप्ति सुलभ बनानी चाहिए। इससे जानबूझ कर गुमराह करने वाली दवा कंपनियों के विरुद्ध कठोरता से कानून लागू करने में काफी मदद मिलेगी।

इसमें दो राय नहीं हो सकती कि हमें अप्रचलित व नुकसान की संभावना वाली दवाओं के जोखिम से अपने बचाव के लिए एक रणनीति तैयार करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अपनी मर्जी से दवा करने के खतरों तथा दवाओं व संदेहास्पद चिकित्सा प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के लिए गुमराह करने वाले विज्ञापनों के प्रति आम जनता को शिक्षित व जागरूक बनाना चाहिए। इन मुद्दों पर जनता को शिक्षित करने से एक हद तक नकली दवा बनाने वाली कंपनियों पर भी अंकुश लगाया जा सकता हैं। निश्चित रूप से यह वैज्ञानिक–साक्षरता का ही एक अंग है। इस विषय में पहल करने का दायित्व विज्ञान–संचारकों पर ही है। कहां से शुरूआत करें? कृपया हमें अवश्य लिखें।

❒ **विनय बी. काम्बले**

**सम्पादक : विनय बी. काम्बले**

पत्र व्यवहार के लिए पता : **विज्ञान प्रसार** सी–24 कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016

दूरभाष : 6967532, फैक्सः 6965986

ई–मेल : *vigyan@hub.nic.in*

वेबसाइट : *http:èèwww.vigyanprasar.com*

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदायी नहीं है।

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं।

# आचार्य जगदीश चन्द्र बसु

## आधुनिक भारतीय विज्ञान के अग्रदूत

सुबोध महंती

विशाल वन में वृक्ष अपनी सूखी पत्तियां विपुल संख्या में एक–एक कर गिराते हैं और इस तरह अपने नीचे की जमीन को उपजाऊ बना देते हैं। जिस देश में वैज्ञानिक शोधकार्य निरंतर होते हैं, वहां उस ज्ञान के अंश भी लगातार प्रसारित होते रहते हैं। इस तरह लोगों की हृदय–भूमि सजीव बनी रहती है, और विज्ञान की जीवंत अनुभूति उसे उर्वर बना देती है। ऐसा न होने के कारण ही हमारी सोच अवैज्ञानिक हो गई है। हम न केवल शिक्षा, बल्कि व्यवसाय के क्षेत्र में भी दरिद्रता का अनुभव करते हैं, इसीलिए वहां हमने हताशा में घुटने टेक दिए हैं।

रवीन्द्र नाथ टैगोर की 'अवर युनिवर्स' शीर्षक अंग्रेजी से अनूदित पुस्तक 'विश्व–परिचय' से उद्धृत : हिन्दी अनुवाद – इन्दु दत्त

''मुझे जीवन में यदि कोई सफलता मिली है तो उसका निर्माण असफलता की अडिग नींव पर हुआ है।''

जगदीश चन्द्र बसु

बसु एक भौतिक विज्ञानी थे और अंत तक उनका दृष्टिकोण एक भौतिकविज्ञानी जैसा ही रहा।

मेघनाद साहा

जगदीश चन्द्र बसु की वैज्ञानिक गतिविधियों की सामान्य – स्वीकार्य व्याख्या यही है कि उनकी प्रकृति–संबंधी अवधारणा जीव विज्ञानी जैसी थी; कलकत्ता में छात्र–जीवन के दौरान जीव विज्ञान के अध्ययन के अवसर न मिलने और बाद में जीव विज्ञान के शिक्षक पद के अभाव ने जगदीश चन्द्र को भौतिकी के शिक्षक का पद स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया......''

डी.एम. बसु

वह (बसु) आधुनिक भारत के पहले भौतिक विज्ञानी, और उसके प्रारंभिक दौर के वैज्ञानिकों में से एक थे। गैलीलियो और न्यूटन की परंपरा में अपनी मातृभूमि की ओर से सक्रिय भागीदारी करने वाले वह पहले व्यक्ति थे। उन्होंने ब्रिटेन के संदेहालु लोगों को हतप्रभ कर दिया। उन्होंने दर्शा दिया कि पूर्वी मस्तिष्क पश्चिमी विज्ञान द्वारा अपेक्षित सटीक और श्रमसाध्य चिंतन करने की क्षमता रखता है। उन्होंने बंधे–बंधाए ढर्रे को तोड़ डाला।

एस. दासगुप्ता ''जगदीश चन्द्र बोस एंड द इंडियन रिसपांस टू वेस्टर्न साइंस'' में

जगदीश चन्द्र बसु को आमतौर पर जे. सी. बोस के नाम से जाना जाता है। भारत के आधुनिक विज्ञान के इतिहास में उनका अद्वितीय स्थान है। उन्हें भारत का पहला आधुनिक वैज्ञानिक माना जाता है। लेकिन यह भी सही है कि वह आधुनिक भारतीय विज्ञान के अकेले अग्रदूत नहीं थे। भारतीय रसायन विद्यालय तथा एक रसायन उद्योग की स्थापना करने वाले प्रफुल्ल चन्द्र रे (सन् 1861–1944) और महान् गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन (सन् 1887–1920) बसु के समकालीन थे, और उनके नाम भी आधुनिक भारतीय विज्ञान के इतिहास में बसु जितने ही परिचित हैं। सबसे पहले रामानुजन ही रायल सोसाइटी के फेलो चुने गए। ब्रिटेन के वैज्ञानिक समुदाय द्वारा किसी वैज्ञानिक को दी जाने वाली यह श्रेष्ठतम मान्यता थी। लेकिन बसु के एक जीवनीकार सुब्रत दासगुप्ता ने लिखा है : ''व्यक्ति के रूप में सबसे पहले बसु को ही अंग्रेज समुदाय तथा पश्चिमी विज्ञान के गर्भगृह में प्रवेश करने का अवसर मिला।'' जनवरी 1897 में बसु ने लंदन के रॉयल इंस्टीट्यूशन में शुक्रवारी सांध्य परिचर्चा (Friday Evening Discourse) में एक व्याख्यान

आचार्य जगदीश चन्द्र बसु

दिया। उस समय वह नई खोजों की घोषणा करने का सर्वाधिक सम्मानजनक मंच था। शुक्रवार को सायंकालीन परिचर्चाओं का आयोजन सन् 1826 में माइकेल फैराडे (1791–1867) ने शुरू किया था। रॉयल इंस्टीट्यूशन में काम कर चुके कुछ अत्यधिक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक भी इन परिचर्चाओं में भाग ले चुके थे। अपने व्याख्यान के दौरान बसु ने रेडियो तरंगें उत्पन्न करने तथा उन्हें पहचानने वाले उपकरण का प्रदर्शन किया था।

बसु ने पहले भौतिकी, और फिर शरीर विज्ञान में पथ–प्रदर्शक शोधकार्य किया। सन् 1888 में हेनरिक रुडॉल्फ हर्ट्ज (1857–94) ने 60 से.मी. तरंगदैर्घ्य की विद्युत–चुंबकीय तरंगों को उत्पन्न किया तथा उन्हें पहचाना। ऐसा करके उन्होंने जेम्स क्लार्क मैक्सवेल (1831–79) के विद्युत–चुंबकीय सिद्धांत की पुष्टि की। लेकिन मिलीमीटर की लम्बाई वाली तरंगें उत्पन्न कर उनके गुणों का अध्ययन सबसे पहले बसु ने ही किया। उन्होंने विद्युत–चुंबकीय तरंगों के प्रसारण और ग्रहण करने के तरीकों को भी और सुधारा। शुभ समाचार है कि वायरलेस टेलीग्राफी

के क्षेत्र में बसु के मार्ग–दर्शाने वाले कामों को इन दिनों उचित मान्यता दी जा रही है। इंस्टीट्यूट ऑफ इलेक्ट्रिकल एंड इलेक्ट्रानिक्स इंजीनियर्स ने अपने एक प्रकाशन में लिखा है : ''ठोस अवस्था वाले खोजी डायोड उपकरणों की उत्पत्ति और उनके पहले प्रमुख उपयोग के बारे में हमारे खोजी शोधकार्य से यह बात सामने आई कि अपने विश्व प्रसिद्ध प्रयोग के दौरान अटलांटिक पार से पहला वायरलेस सिग्नल प्राप्त करने के लिए मार्कोनी ने सर जे.सी. बसु द्वारा सन् 1898 में आविष्कृत टेलीफोन से जुड़े लौह–पारा–लौह–संसक्तक (कोहेर) उपकरण का उपयोग किया था।'' बसु माइक्रोवेव प्रकाशिकी तकनीक के अग्रदूत थे। सबसे पहले उन्होंने ही दर्शाया था कि अर्धचालक परिशोधकों के जरिए रेडियो तरंगों का पता लगाया जा सकता है। बसु का गैलेना रिसीवर लेड सल्फाइड – फोटो संचालक उपकरण का प्राथमिक नमूना था।

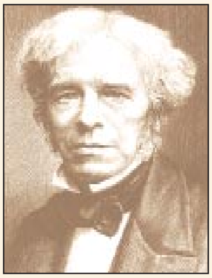

माइकेल फैराडे

सजीव और निर्जीव के बीच संबंध तथा उत्तेजनाओं के प्रति पौधों की प्रतिक्रिया के बारे में बसु के सिद्धांतों को उनके समय में गंभीरता से नहीं लिया गया, और उनके कुछ विचार आज भी गूढ़ लगते हैं। लेकिन डी.एम. बसु (जो बोस के बाद संस्थान के निदेशक बने) ने बताया है : ''उन्होंने बाहरी विश्व से विद्युत् संकेतों के रूप में प्राप्त संदेशों को रिकार्ड करने वाले विद्युत् नेत्र के मॉडल और सूचना–एकत्रण प्रणाली के रूप में स्मृति के भौतिक मॉडल की जो परिकल्पना की थी, उसके आधार पर उन्हें वर्तमान साइबरनेटिक्स विज्ञान–शाखा का अग्रदूत मानना उचित है।'' अब यह भी माना जाने लगा है कि बसु ने कालक्रम जैविकी (क्रोनोबॉयलॉजी) और कुंडलाकार आवर्तन (सरकाडियम रिदम) के क्षेत्र में इन दोनों पारिभाषिक शब्दों की उत्पत्ति से पहले ही अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

जेम्स क्लार्क मैक्सवेल

बसु, भारत में प्रायोगिक विज्ञान के अग्रदूत थे। वह प्रथम श्रेणी के आविष्कारक थे। उन्होंने भौतिकी और शरीर विज्ञान में शोध के लिए अनेक संवेदनशील उपकरणों का निर्माण किया।

बसु रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861–1941) के घनिष्ठ मित्र थे। टैगोर ने उन्हें अनेक कठिनाई भरे अवसरों पर काफी भावनात्मक संबल भी दिया था। वैज्ञानिक खोज के काम में गंभीरतापूर्वक लगने से पहले (सन् 1894) बसु ने अपनी कई छुट्टियां मनोरम दृश्यों वाले ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण और कैमरे से छायांकन करते हुए बिताई। उन्होंने अपने इन अनुभवों को बांग्ला भाषा में प्रभावशाली ढंग से लिपिबद्ध किया। उनके इस लेखन को उनके कुछ अन्य लेखों और साहित्यिक उद्‌गारों के साथ 'अब्यक्त' शीर्षक से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया।

बोस इन्स्टीट्यूट का भवन

जगदीश चन्द्र बसु का जन्म 30 नवंबर 1858 को अपनी ननिहाल मेमनसिंह में हुआ था। यह स्थान अब बांग्ला देश में है। इसी साल सन् 1757 से ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा शासित भारत सीधे ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आ गया। उस पर पूरी तरह ब्रिटिश सम्राट का शासन हो गया और ईस्ट इंडिया कंपनी के तत्कालीन प्रशासक लार्ड कैनिंग को वाइसराय घोषित कर दिया गया। उससे पहले सन् 1772 में वारेन हेस्टिंग्ज के मुख्य प्रशासक का पद संभालने के समय से ही इस पद पर आसीन व्यक्ति को गवर्नर जनरल कहा जाता था। बसु का पैतृक घर विक्रमपुर के पास ररीखल नामक गांव में था। यह स्थान बांग्लादेश की वर्तमान राजधानी ढाका से अधिक दूर नहीं है। उनके पिता भगवान चन्द्र बसु ने अंग्रेज सरकार में प्रशासन और न्यायपालिका के अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। बसु के जन्म के समय भगवान चन्द्र फरीदपुर के डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। बसु के बचपन का अधिकतर समय यहीं पर बीता। उनके पिता भगवान चन्द्र बसु कोई साधारण सरकारी कर्मचारी नहीं थे। बसु के सर्वाधिक प्रामाणिक जीवनी लेखकों में से एक और सेंट एंड्रयूज विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर रह चुके पैट्रिक गेडेस के शब्दों में : ''फरीदपुर के डिप्टी मजिस्ट्रेट भगवान चन्द्र बसु न केवल नगरक्षेत्र, बल्कि उसके इर्द–गिर्द के अनेक गांवों के भी सक्रिय रक्षक थे। आधुनिक मजिस्ट्रेट अपनी अदालत और घर तक ही सीमित रहते हैं, लेकिन उन दिनों इस पद पर ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती थी जिसमें न्याय कर सकने की क्षमता, बुद्धिमत्ता और स्थानीय परिस्थितियों के ज्ञान के साथ ही सक्रिय पहल लेने की क्षमता और साहस भी हो, साथ ही वह किसी भी समय अपनी पुलिस और लोगों की कमान संभालने और हमलावरों पर हमला करने के लिए तत्पर रहे। श्री भगवान चन्द्र की इस तत्परता के बारे में कई किस्से कहे जा सकते हैं। इसका सामान्य सा उदाहरण यह है कि एक बार उन्होंने आस–पास ही डकैतों के एक गिरोह की मौजूदगी की खबर सुनी। श्री बसु फौरन हाथी पर सवार हुए और उस समय जो भी थोड़ी सी पुलिस मिल सकी, उसे लेकर सीधे डाकुओं के अड्डे पर जा पहुंचे। वे (डाकू) भौंचक होकर तितर–बितर हो गए। फुर्तीले मजिस्ट्रेट (हाथी से) नीचे उतरे और डाकुओं के सरगना को खुद पकड़ कर मुकदमा चलाने के लिए साथ ले गए।'' भगवान चन्द्र ने जिस खतरनाक डकैत को जेल की सजा दी थी, उसे बाद में जगदीश चन्द्र की देखभाल के लिए अपने घर पर रखा। उस समय जगदीश चन्द्र नवयुवक ही थे। अंग्रेज सरकार के कर्मचारी होने के बावजूद भगवान चन्द्र पक्के राष्ट्रवादी और कल्पनाशील व्यक्ति थे।

हेनरिक रुडोल्फ हर्ट्ज

भाग्य की कृपा से वंचित देशवासियों को रोजगार और बेहतर अवसर उपलब्ध कराने के लिए उन्होंने शिक्षा, कृषि और तकनीक संबंधी कई परियोजनाएं शुरू कीं। हालांकि उनके प्रयास कई बार सफल नहीं भी होते थे। सन् 1869 में बसु के पिता सहायक आयुक्त बन कर बर्दवान चले गए। वहां पर उन्होंने बढ़ईगिरी और धातुशिल्प के कारखानों के अलावा एक ढलाईघर भी शुरू कराया। बसु अपने पिता के आदर्शों से काफी प्रभावित थे। फरीदपुर में उनके पिता द्वारा शुरू करवाए गए मेले और प्रदर्शनी की पचासवीं वर्षगांठ पर बोलते हुए उन्होंने कहा, ''उनकी असफलता! हां, लेकिन वह न तो उपेक्षणीय है, और न ही पूरी तरह निरर्थक। इस संघर्ष को देख कर ही उनके पुत्र ने सफलता और असफलता को एक ही दृष्टि से देखना और यह महसूस करना सीखा कि कई बार जीत से हार अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है। मेरे लिए उनका जीवन एक वरदान के समान रहा है और मैं उनके लिए स्वयं को प्रतिदिन कृतज्ञ अनुभव करता है, हालांकि लोग कहते हैं कि उनका जीवन कुछ और बड़े कामों के लिए था, लेकिन उन्होंने उसे नष्ट कर डाला। बहुत

कम लोग यह अनुभव करते हैं कि विशाल महाद्वीप असंख्य जीवों की हड्डियों के ढांचों से बनते हैं। इसी तरह भारत के महान् स्वरूप का निर्माण भी उनके और उनके जैसे कई जीवनों के भग्नावशेषों पर किया जाता है। हम नहीं जानते कि ऐसा क्यों होता है, लेकिन इतना जरूर जानते हैं कि धरती मां बलिदान मांगती है।''

रवीन्द्र नाथ टैगोर

बसु ने अपनी पढ़ाई बांग्ला भाषा के माध्यम से शिक्षा देने वाली एक पाठशाला में शुरू की। उसे फरीदपुर में उने पिता ने ही स्थापित किया था। भगवान चन्द्र चाहते तो बड़ी आसानी से अपने पुत्र को स्थानीय अंग्रेजी स्कूल में भेज सकते थे, लेकिन वह उसे अंग्रेजी और विदेशी संस्कृति से परिचित कराने से पहले अपनी मातृभाषा और अपनी संस्कृति से परिचित कराना चाहते थे। इस पाठशाला में बसु ने किसानों, मछुआरों और मजदूरों के बच्चों के साथ शिक्षा प्राप्त की। उनकी संगत ने बसु में प्रकृति–प्रेम का भाव जगा दिया। बसु गांव के मेलों में अक्सर जात्रा (लोक–नाटक) देखा करते थे। इससे वे रामायण और महाभारत जैसे महान् महाकाव्यों को पढ़ने के लिए प्रेरित हुए। महाभारत में कर्ण के चरित्र ने उन पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने लिखा है : ''छोटी जाति का होने के कारण उसे (कर्ण) उपेक्षा मिली, असुविधाओं का सामना करना पड़ा, पर वह उनसे हमेशा ईमानदारी से खेलता और जूझता रहा। इसलिए भले ही उसके जीवन में निराशाओं और पराजयों का सिलसिला अंत तक जारी रहा और वह अर्जुन के हाथों मारा गया, पर बचाव में उसका जीवन मुझे महानतम विजय के समान लगता था। मैं अब भी उस प्रतियोगिता के बारे में सोचता हूं, जिसमें अर्जुन विजेता रहा था, और तभी उसे चुनौती देने के लिए एक अजनबी के रूप में कर्ण वहां आ पहुंचा था। नाम और जाति के बारे में पूछे जाने पर उसका उत्तर था : ''मैं अपना पूर्वज स्वयं हूं। आप शक्तिशाली गंगा से तो नहीं पूछते कि अपने अनेक स्रोतों में से उसका उद्‌गम किससे हुआ है। उसका बहाव स्वयं ही अपना औचित्य सिद्ध करता है, इसी प्रकार मेरे कर्म ही मेरे अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करते हैं।'' उन्होंने आगे लिखा है: ''मेरे बचपन के नायक कर्ण की तरह मेरा जीवन भी हमेशा संघर्षों से भरा रहा है, और अंत तक ऐसा ही रहना चाहिए। मनुष्य को परिस्थितियों के बारे में शिकायत करने की बजाय, उन्हें स्वीकार करके उनका सामना करना चाहिए, और उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।''

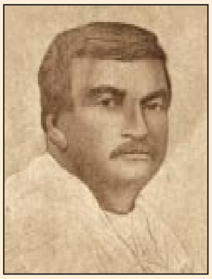

भगवान चन्द्र बोस, जगदीश चन्द्र बसु के पिता

सन् 1869 में बसु को कोलकाता (तत्कालीन कलकत्ता) भेज दिया गया। वहां उन्होंने हेयर स्कूल में केवल तीन महीने पढ़ाई की थी, तभी उनका दाखिला सेंट ज़ेवियर्स कालेज में करा दिया गया। वह माध्यमिक स्तर का स्कूल होने के साथ ही कालेज भी था। उसकी स्थापना सन् 1860 में बेल्जियन जेसुइट्स ने की थी। ज़ेवियर्स कालेज में ही बसु फादर युजीन लैफांट (सन् 1887–1908) के संपर्क में आए। कोलकाता में आधुनिक विज्ञान परंपरा को विकसित करने में लैफांट की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उनकी पहल के कारण सेंट ज़ेवियर कालेज में विज्ञान की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा था। उन्होंने सन् 1875 में कॉलेज में ही एक छोटी सी वेधशाला स्थापित की। लैफांट उन प्राचार्यों में थे, जिन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय को विज्ञान में पूर्व स्नातक स्तर का एक पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑफ साइंस में विज्ञान संबंधी लोकरुचि के भाषण भी दिए। इस संस्था की स्थापना सन 1876 में महेन्द्र लाल सरकार (सन् 1833–1904) ने की थी। वहां पहला व्याख्यान लैफांट ने ही दिया था। बसु उनसे काफी प्रभावित थे। पैट्रिक गेडेस के शब्दों में : ''उस कालेज (सेंट ज़ेवियर कालेज) में भौतिकी के प्रोफेसर के रूप में लैफांट के अध्यापन और प्रभाव को उनके सभी शिष्य सही मायने में शिक्षाप्रद मान कर याद करते हैं। उनके पास प्रयोगों की दौलत थी और वे उनकी व्याख्या अत्यंत स्पष्ट ढंग से करते थे। इसलिए उनकी कक्षा पूरे कालेज में सबसे रोचक होती थी, और उनके अध्यवसाय के गुण, कुशाग्रता, एवं प्रायोगिक कार्यों में पटुता को यह युवा छात्र सबसे अधिक सराहता था। बौद्धिक स्पष्टता और उपकरणों तथा साधनों की संपत्ति के समन्वयन का पहला प्रशिक्षण बसु को यहीं मिला, जिसने उन्हें अपने शिक्षक को भी पीछे छोड़कर उनका सही अर्थों में प्रतिनिधित्व करने और मान बढ़ाने के योग्य बनाया।

फादर इयुगेन लेफांट

सन् 1879 में बसु ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की भौतिक विज्ञान समूह की स्नातक स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। स्नातक स्तर की पढ़ाई करते समय बसु के पास भविष्य की कोई स्पष्ट योजना नहीं थी सिवाय इसके कि वह उच्च प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए इंगलैंड जाना चाहते थे। लेकिन उनके पिता की आर्थिक स्थिति उन्हें इंगलैंड भेजने लायक नहीं थी। उनके पिता की नए ढंग की अधिकतर योजनाएं असफल हो गई थी, और नतीजे के तौर पर वे कर्ज से दब गए थे। कुछ योजनाएं सफल भी हुई थीं, पर बसु के पिता ने उनसे लाभ नहीं कमाया। उदाहरण के तौर पर उन्होंने जनता–बैंक शुरू किया जिसे बाद की सहकारी समितियों का शुरुआती रूप माना जा सकता है। वह बैंक काफी सफल रहा। बैंक का संस्थापक होने के कारण बसु के पिता जी ने जो शेयर खरीदे थे, यदि उन्होंने उनको अपने पास रखा होता तो कोई आर्थिक कठिनाई नहीं हुई होती। लेकिन उन्होंने वे शेयर अपने अपेक्षाकृत गरीब दोस्तों को दे डाले। इसलिए बसु ने फैसला किया कि उनका पहला कर्तव्य धन कमाना और अपने पिता के ऋण को उतारना है।

बनसुन्दरी देवी, जगदीश चन्द्र बसु की मां

उनके लिए स्वाभाविक तो यह था कि अपने पिता के उदाहरण का अनुकरण कर वे उस समय अत्यंत प्रतिष्ठित मानी जाने वाली भारतीय लोक सेवा (इडियन सिविल सर्विस) में जाते। लेकिन उनके पिता नहीं चाहते थे कि उनका बेटा सिविल सर्वेंट बने। क्योंकि उनका सोचना था कि ऐसा होने पर उनका बेटा सामान्य जन से दूर हो जाएगा। दरअसल उनके पिता चाहते थे कि उनका बेटा आम लोगों के लिए मददगार बने, पर ब्रिटिश–भारत में सिविल सर्वेंट बनने के बाद यह संभव नहीं था। अंत में तय किया गया कि बसु ब्रिटेन के किसी विश्वविद्यालय में औषधि विज्ञान का अध्ययन करेंगे। लेकिन राह में दो बाधाएं थीं। पहली कठिनाई तो यही थी कि उनके पिता की आर्थिक स्थिति अपने पुत्र की इतनी खर्चीली शिक्षा का भार वहन करने लायक नहीं थी। इसके अलावा भगवान चन्द्र उन दिनों दो साल के लिए घटे हुए वेतन पर चिकित्सा–अवकाश पर थे। यह भी निश्चित नहीं था कि उनका स्वास्थ्य उनके काम पर लौटने लायक कब होगा और उन्हें पूरा वेतन कब मिलेगा। बसु के सामने दूसरी कठिनाई उनकी मां को लेकर थी। वह अज्ञात पश्चिमी दुनिया में अपने पुत्र के जाने को लेकर काफी चिंतित थीं।

उन दिनों समुद्री यात्रा काफी खतरनाक मानी जाती थी। वह अपने दूसरे दस वर्षीय पुत्र को खो चुकी थीं, इसलिए अपने बचे हुए इकलौते पुत्र पर उनका अधिकार–बोध कुछ अधिक ही था। सारी परिस्थितियों पर विचार करने के बाद जब बसु ने यह फैसला ले लिया कि वे भारत में ही बस कर अपने लिए अधिकतम संभावना तलाशेंगे तभी उनकी मां बनसुंदरी देवी ने अचानक यह निर्णय लिया कि उनके पुत्र को अपनी मूल योजना पर अमल करते हुए इंगलैंड जाना चाहिए। उन्होंने बसु से कहा : ''मेरे बेटे, मैं तुम्हारे इंग्लैंड जाने के बारे में तो अधिक कुछ नहीं समझती, लेकिन अधिक से अधिक शिक्षा पाने की तुम्हारे मन की इच्छा को समझ सकती हूं, इसलिए मैंने फैसला ले लिया है, तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। हालांकि तुम्हारे पिता के भविष्य की पूंजी में से कुछ नहीं बचा है, लेकिन मेरे पास अपने गहने हैं। मेरे पास कुछ अपना पैसा भी है। इनकी मदद से मैं व्यवस्था कर सकती हूं। तुम जाओगे।'' एक मां के लिए यह काफी साहसिक निर्णय था। इसके लिए भारत तथा भारतीयों को उनका आभारी होना चाहिए। बसु की मां की सहमति के बाद उनके पिता भी फौरन तैयार हो गए। उनकी आपत्ति केवल अपने पुत्र के वकालत पढ़ने और सिविल सर्वेंट न बनने को लेकर थी। इस तरह अपनी मां के ज़ेवर बेचकर बसु इंगलैंड के लिए रवाना हुए।

लार्ड रेले

लेकिन वहां साल भर तक औषधि विज्ञान की पढ़ाई करने के बाद उन्हें अपना इरादा बदलना पड़ा। इसका कारण उन्हें पहले हो चुका बुखार था। डिसेक्शन–कक्ष की तीखी गंध के कारण उन्हें रह–रह कर फिर बुखार हो जाता था। सन् 1882 में बसु लंदन से कैंब्रिज रवाना हुए। वहां प्रकृति विज्ञान का अध्ययन करने के लिए क्राइस्ट्स कालेज में दाखिला लेने का एक कारण यह था कि उनके एक निकट संबंधी आनंद मोहन बसु (सन् 1847–1906) वहां पढ़ चुके थे। आनंद मोहन ने सन् 1874 में गणित का ट्रिपो हासिल किया था, और कैंब्रिज में वह पहले भारतीय रैंगलर थे। कैंब्रिज में लार्ड रेले (सन् 1842–1919), माइकेल फास्टर (सन् 1836–1907), सिडनी विनेस (सन् 1849–1934) और फ्रांसिस डार्विन (सन् 1848–1925) जैसे लोग बसु के शिक्षक थे।

माइकेल फॉस्टर

सन् 1884 में बसु ने प्रकृति विज्ञान–त्रयी (ट्रिपो) में स्नातक स्तर की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। उसी साल उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से विज्ञान की स्नातक परीक्षा भी उत्तीर्ण की। भारत लौटने के बाद उन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में नौकरी कर ली। उस कालेज में वह भौतिकी के प्रोफेसर नियुक्त होने वाले पहले भारतीय थे। बंगाल के तत्कालीन जन–शिक्षण निदेशक सर अल्फ्रेड क्राफ्ट और प्रेसीडेंसी कालेज के प्राचार्य आर. टरवने ने उनकी नियुक्ति का प्रबल विरोध किया। लेकिन भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड रिपन के हस्तक्षेप के कारण बसु को अंततः नियुक्ति मिल गई। बसु की नियुक्ति में ब्रिटेन के पोस्ट मास्टर जनरल और अर्थशास्त्री प्रोफेसर फॉसेट ने भी सहयोग दिया। फॉसेट बसु के संबंधी आनंद मोहन सेन के मित्र थे। फॉसेट का संस्तुति पत्र लेकर बसु, लार्ड रिपन से शिमला में मिले। उन दिनों शिमला गर्मी के मौसम में भारत की राजधानी हुआ करता था। बसु के प्रति रिपन का व्यवहार काफी सौजन्य भरा था। उन्होंने बसु को इंपीरियल एजुकेशनल सर्विस (शाही शिक्षा सेवा) में नामित करने का वादा किया। लेकिन कलकत्ता आकर जब वह क्राफ्ट से मिले तो बसु के प्रति उसका रुख बिल्कुल अनुकूल नहीं था। क्राफ्ट ने कहा : ''आम तौर पर मुझसे ऊपर से नहीं, बल्कि नीचे से संपर्क किया जाता है। इस समय इंपीरियल एजुकेशनल सर्विस में उच्च पद पर किसी नियुक्ति की संभावना नहीं है। मैं तुम्हें प्रांतीय सेवा में ही स्थान दे सकता हूं, वहां से तुम्हें प्रोन्नति दी जा सकती है।'' बसु ने वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसके बाद वाइसराय ने बंगाल सरकार से बसु की नियुक्ति में देर होने के बारे में लिखित स्पष्टीकरण मांगा। अंततः क्राफ्ट बसु को नियुक्त करने के लिए विवश हो गए।

मिमोसा पुडिका और डेस्मोडियम गाइरेन्स नामक वे दो पौधे जो विश्व भ्रमण के दौरान बोस के साथ गए

उन दिनों ब्रिटेनवासी भारतीयों को उच्च शैक्षणिक पदों पर नियुक्त होने योग्य नहीं मानते थे। अतः कितना भी योग्य होने के बावजूद शाही शैक्षिक सेवा उनकी पहुंच से बाहर रहती थी। उदाहरण के तौर पर पी.सी.रे. इंगलैंड से पी–एचडी की उपाधि लेकर लौटे थे, पर उन्हें शाही शिक्षा सेवा में स्थान नहीं मिला, और उन्हें प्रांतीय शिक्षा सेवा से ही संतोष करना पड़ा। भारतीय सिविल सेवा में तो भारतीय निर्धारित परीक्षा उत्तीर्ण कर नियुक्ति पा सकते थे, पर शाही शिक्षा सेवा में केवल मनोनयन के जरिए ही प्रवेश पाया जा सकता था।

लार्ड रिपन के व्यक्तिगत हस्तक्षेप के कारण बसु को उच्च शिक्षा सेवा में नियुक्ति तो मिल गई, पर उन्हें अस्थायी रूप से नियुक्त किया गया। उन्हें इस सेवा में नियुक्ति मिलने पर प्राप्त होने वाले वेतन से आधा वेतन ही मिलता था। बसु ने इसका विरोध किया और यूरोपियों को मिलने वाले वेतन के बराबर वेतन की मांग की। जब उसके विरोध पर ध्यान नहीं दिया गया, तो उन्होंने वेतन लेने से इनकार कर दिया। वह तीन साल तक बिना वेतन लिए अपना शैक्षिक दायित्व निभाते रहे। अंततः जन–शिक्षण निदेशक और प्राचार्य दोनों ने बसु की अध्यापन क्षमता को स्वीकार करने के साथ ही उनके अक्खड़ स्वभाव को भी पहचाना। नतीजे के तौर पर उनकी नियुक्ति को पूर्व प्रभाव से स्थायी कर दिया गया। उन्हें तीन साल का वेतन एकमुश्त दिया गया, जिसका उपयोग उन्होंने अपने पिता का कर्ज चुकाने के लिए किया।

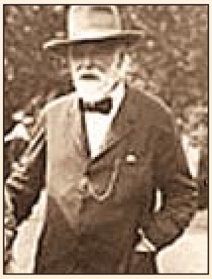
ओलिवर लाज

सन् 1894 में अपने पैंतीसवें जन्मदिन पर बसु ने अध्यापन की सीमा से बाहर निकल कर वैज्ञानिक शोध कार्यों में संलग्न होने का निर्णय लिया। लेकिन न तो कोई प्रयोगशाला, न कोई उपकरण, और न ही कोई सहयोगी उपलब्ध था। उन्हें प्रेसीडेंसी कालेज में एक 24 वर्गफुट का कमरा मिला था। उन्होंने अपना शोधकार्य उसी कमरे में किया। एक अप्रशिक्षित कलई करने वाले की सहायता से उन्होंने विद्युत् विकिरण के बारे में अपने पहले शोधकार्य के लिए उपकरणों का आविष्कार और निर्माण किया। विद्युत्–तरंगों के गुणों का अध्ययन करने के लिए बसु, ओलिवर लॉज की पुस्तक 'हर्ट्ज एंड हिज सक्सेसर्स' पढ़कर प्रेरित हुए थे। बसु ने रेडियो तरंगों को उत्पन्न करने के लिए एक नए ढंग के विकिरण का निर्माण और आविष्कार किया। उन्होंने रेडियो तरंगों को ग्रहण करने के लिए एक अनूठे ढंग के अत्यंत संवेदनशील संसक्तक (कोहेरर), यानी रेडियो रिसीवर का भी निर्माण किया। बसु का उपकरण यूरोप में प्रयोग मे लाए जाने वाले संस्कतकों की तुलना में अधिक सुव्यवस्थित, सक्षम और कारगर था। फ्रांस के

एडुआर्ड ब्रैनली (सन् 1846–1940) द्वारा सन् 1890 में ईजाद किए गए संसक्तक को ओलिवर लाज ने और सुधरा हुआ रूप दिया था। संसक्तक का आविष्कार ब्रैन्ली ने किया तो था पर उसने इसकी कल्पना संसूचक (डिटेक्टर) उपकरण के रूप में नहीं की थी। रेडियो संसूचक के रूप में इसका उपयोग लाज ने शुरू किया था। इस उपकरण के लिए कोहरर (यानी संसक्तक) शब्द का प्रयोग भी सर्वप्रथम उसी ने किया था। ब्रैन्ली ने दर्शाया था कि यदि कांच की बंद नलियों में धातु के ऐसे टुकड़े भरे हों, जिनका बाहर से ढीला–ढाला संपर्क हो, तो वे विद्युत् उष्मा रोधी (इंसुलेटर) बन जाते हैं। हालांकि धातु के टुकड़े विद्युत्–उष्मा के लिए सुचालक का काम करते हैं, पर कम वोल्टेज के लिए वे अत्यधिक प्रतिरोधक होते हैं, लेकिन हर्ट्ज तरंगों की उपस्थिति में उनका प्रतिरोध काफी घट जाता है। दूसरे शब्दों में वे सुचालक बन जाते हैं, और इस अवस्था में तब तक रहते हैं, जब तक उन्हें हिलाया–डुलाया न जाए। लाज द्वारा विकसित किए गए संसक्तक में धातु के टुकड़ों से जुड़े तार नली के अंतिम छोर से बाहर निकलते हैं, और वे विद्युत धारा मापी से एक क्रम में जुड़े होते हैं। विकिरण होने पर कांच की नली में उपस्थित टुकड़े सुचालक बन जाते हैं। उनमें विद्युतधारा उत्पन्न हो जाती है, जिसका पता विद्युत धारा मापी की सहायता से लगाया जा सकता है। बसु का रेडियो रिसीवर ब्रैन्ली, अथवा लाज के रेडियो रिसीवर से काफी उत्पन्न अवस्था का था। उनके द्वारा विकसित रिसीवर से पहले बनाए गए रिसीवरों की संवेदनशीलता परिवर्तित होती रहती थी, और वे कई बार अनियमित व्यवहार प्रदर्शित करते थे। बसु ने धातु के अनियमित आकार के टुकड़ों के स्थान पर पतले और सर्पाकार तारों की कमानियों का प्रयोग किया। उन्होंने तारों को एबोनाइट में जड़ दिया था, और उन पर एक कमानी का नियंत्रण था। इस परिष्कृत उपकरण की सहायता से बसु ने रेडियो तरंगों के परावर्तन और ध्रुवण जैसे अनेक गुण धर्मों को दर्शाया। उन्होंने एक से.मी. से पांच मि.मी. लंबाई की एक नए प्रकार की तरंगों को भी दर्शाया। इन्हें अब माइक्रोवेव या लघु तरंग कहते हैं। इनका उपयोग राडार, थल दूर संचार, उपग्रह दूर संचार, सुदूर संवेदी पर्यवेक्षण और सूक्ष्म तरंगों से प्राप्त होने वाली भट्ठियों में किया जाता है। मई 1895 में उन्होंने 'दोहरा परावर्तन करने वाले मणियों द्वारा विद्युत् किरणों के ध्रुवण' पर 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' के समक्ष अपना पहला शोधपत्र पढ़ा। उसी साल ''आन द डेटरमिनेशन ऑफ द सल्फर फॉर द इलेक्ट्रिक रे'' शीर्षक वाले उनके लेख को लार्ड रेले ने रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन में भेजा। यह लेख रॉयल सोसायटी के सामने दिसंबर 1895 में पढ़ा गया और सोसायटी की जनवरी 1896 की कार्रवाई में उसे प्रकाशन के लिए स्वीकार किया गया। उसी वर्ष शुक्रवार 27 दिसंबर को 'इलेक्ट्रीशियन' में बसु के तीन लेख प्रकाशित हुए। शायद ये पश्चिम की किसी वैज्ञानिक पत्रिका में प्रकाशित होने वाले किसी भारतीय के पहले लेख थे। उल्लेखनीय है कि उन दिनों इलेक्ट्रीशियन को विद्युत संबंधी मामलों की अत्यंत महत्वपूर्ण पत्रिका माना जाता था। अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद बसु केवल कार्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता और प्रवीणता के कारण सफल हुए। रॉयल सोसायटी ने न केवल उनके लेख को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया, बल्कि अपने संसदीय कोष से उन्हें वित्तीय सहायता भी दी ताकि वे अपना शोध कार्य जारी रख सकें। लंदन विश्वविद्यालय ने उन्हें कोई परीक्षा लिए बिना ही डाक्टर ऑफ साइंस की उपाधि दे दी। लार्ड केल्विन (1824–1907) ने बसु को यह कहकर बधाई दी कि : ''इस कठिन और नए ढंग की प्रायोगिक समस्या को सुलझाने में उनकी सफलता को देखकर मैं वास्तव में प्रशंसा और आश्चर्य से भर उठा हूं।''

लार्ड केल्विन

मेरी अल्फ्रेड कोर्नु

फ्रांसीसी साइंस अकादमी की भूतपूर्व अध्यक्ष मेरी अल्फ्रेड कोर्नू (सन् 1841–1902) ने लिखा : ''आपके शोधकार्य के प्राथमिक परिणाम विज्ञान को आगे बढ़ाने की आपकी क्षमता को दर्शाते हैं। अपनी ओर से मैं आशा करती हूं कि आपने अपने उपकरण को जो परिपूर्णता दी है, मैं अपने भावी शोध कार्यों तथा ईकोल पॉलीटेक्नीक के लिए उसका पूरा लाभ उठाऊंगी।'' बसु को उनके शोध कार्यों में एकाएक मिली सफलता और अग्रणी वैज्ञानिकों से मिली प्रशंसा का प्रभाव भारत में भी दिखा। जब बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर (उप राज्यपाल) सर विलियम मैकेंजी का ध्यान बसु के कामों की ओर आकर्षित किया गया तो उन्होंने बसु की कार्यस्थितियों को और बेहतर बनाने की कोशिश की। बसु के लिए एक ऐसा पद सृजित किया गया, जिसमें अधिक वेतन के साथ ही पहल ले सकने की अधिक संभावनाएं थीं, और शोधकर्ताओं के लिए पर्याप्त समय भी मिल सकता था। लेकिन बसु द्वारा, जो कि उस समय विश्वविद्यालय के फेलो थे, कलकत्ता विश्वविद्यालय की एक बैठक में आधिकारिक दृष्टिकोण का समर्थन न करने के कारण वह नियुक्ति रद्द कर दी गई। नए पद के लिए शिक्षा विभाग की स्वीकृति पाने में असफल लेफ्टिनेंट गवर्नर ने बसु को शोधकार्यों पर हुए खर्च का भुगतान करना चाहा। बसु ने अतीत में किए गए अपने कामों के लिए तो अनुदान लेने से इनकार कर दिया, लेकिन प्रेसीडेंसी कालेज में भविष्य में शोधकार्य करने के लिए सरकार का ढाई हजार रुपए (166 पाउंड) का सालाना अनुदान स्वीकार कर लिया।

जे.जे. थामसन

विलियम मैकेंजी की पहल पर शिक्षा विभाग बसु को छह महीने के लिए प्रतिनियुक्ति पर लंदन भेजने के लिए तैयार हो गया। वह 24 जुलाई 1896 को इंगलैंड के लिए रवाना हुए। उन्होंने रेडियो तरंगों के बारे में अपनी नई खोजों के संबंध में लिवरपूल में आयोजित ब्रिटिश एसोसिएशन फॉर ऐडवांसमेंट ऑफ साइंस की बैठक में व्याख्यान दिया और प्रयोग दर्शाए। वहां जे.जे. थामसन, ओलिवर लाज और लार्ड केल्विन जैसे लोग भी उपस्थित थे। शोधकार्यों में सफलता मिलने के बाद अंग्रेज वैज्ञानिकों से बसु की वह पहली मुलाकात थी। बैठक में उपस्थित वैज्ञानिक बसु की प्रस्तुतियों से काफी प्रभावित हुए। बसु के विलक्षण काम के लिए उनकी पत्नी अबला बसु को बधाई देने के लिए लार्ड कैल्विन ऊपर बनी महिलाओं की गैलरी तक चले गए।

बसु को शुक्रवार की शाम को रॉयल इंस्टीट्यूशन में होने वाली परिचर्चा में व्याख्यान देने के लिए भी आमंत्रित किया गया। यह काफी बड़ा सम्मान था। उस व्याख्यान की तैयारी के लिए भारत सरकार ने इंगलैंड में बसु की प्रतिनियुक्ति की अवधि तीन महीने बढ़ा दी। उन्होंने शुक्रवार की सायंकालीन परिचर्चा में 19 जुलाई 1897 को व्याख्यान दिया। भाषण का शीर्षक था : ''विद्युत् किरणों का ध्रुवीकरण''। बसु को सुनने के लिए ओलिवर लाज, सर जॉसेफ जॉन थामसन (1856–1940) और लार्ड केल्विन समेत पांच सौ से अधिक लोग एकत्र हुए। उस व्याख्यान की न केवल प्रशंसा हुई, बल्कि उसके महत्व को देखते हुए उसे रॉयल सोसायटी की कार्रवाइयों के विवरण में प्रकाशित करने का निर्णय भी लिया गया। बसु की ख्याति जल्दी ही फ्रांस और जर्मनी जैसे ब्रिटेन के पड़ोसी देशों तक पहुंच गई। उन्हें अपने शोध के परिणामों पर प्रकाश डालने के लिए फ्रांस की फिजिकल सोसायटी ऑफ पेरिस और बर्लिन (जर्मनी) के अग्रणी वैज्ञानिकों ने आमंत्रित किया।

इंगलैंड में बसु के सहयोगी उनकी उपलब्धियों से काफी प्रभावित थे, और वे चाहते थे कि बसु को जिन स्थितियों में काम करना पड़ता है, उनमें

सुधार आए। उनके पास शोधकार्य करने के लिए कोई उपयुक्त प्रयोगशाला नहीं थी। इस बारे में लार्ड केल्विन ने तत्काल विदेश सचिव लार्ड जार्ज हैमिल्टन को लिखा : ''भारत की प्रतिष्ठा और कलकत्ता में विज्ञान की शिक्षा की दृष्टि से यह उपयुक्त होगा कि डा. बसु की प्रोफेसरी के अंतर्गत कलकत्ता विश्वविद्यालय के संसाधनों में एक सुसज्जित प्रयोगशाला शामिल की जाए।'' लार्ड केल्विन के पत्र के बाद रॉयल सोसायटी के तत्कालीन अध्यक्ष लार्ड जॉसेफ लिस्टर (1827–1912), जार्ज फ्रान्सिस फिट्‌जरैल्ड (1851–1901) सर विलियम रैमसे, सर जार्ज गैब्रिएल स्टोक्स (1819–1903) और अन्य कई प्रमुख वैज्ञानिकों ने अपने संयुक्त हस्ताक्षरों वाला एक पत्र हैमिल्टन को भेजा। इसमें कहा गया था : ''हमारी दृष्टि मे प्रेसीडेंसी कालेज में उन्नत शिक्षा और अनुसंधान के लिए भारतीय साम्राज्य में एक केंद्रीय प्रयोगशाला की स्थापना का जो अत्यंत महत्व है, उस संबंध में हमारा मानना है कि इससे केवल उच्च शिक्षा को ही लाभ नहीं होगा, बल्कि देश के भौतिक हित भी व्यापक स्तर पर सिद्ध होंगे; इसीलिए हम आपसे भारत जैसे महान साम्राज्य की आवश्यकता के अनुरूप भौतिकी की एक प्रयोगशाला की स्थापना के बारे में आग्रह करने का साहस कर रहे हैं।'' विदेश सचिव ने न केवल वह पत्र भारत सरकार को भेजा, बल्कि उस पर अपनी यह संस्तुति भी दर्ज कर दी, ''मेरा विचार है कि जिस प्रकार के संस्थान का उल्लेख किया गया है, उसकी स्थापना के मसले पर महामहिम की परिषद में विचार किया जाना चाहिए।' हालांकि तत्कालीन वाइसराय लार्ड एल्गिन ने बसु को सूचित किया कि सरकार उनकी परियोजना में रुचि रखती है, लेकिन सरकार के संबंधित विभागों ने परियोजना के महत्व को स्वीकार करने के बावजूद उसे भविष्य के लिए स्थगित कर देने का फैसला लिया। प्रस्तावित प्रयोगशाला की नींव बसु के इस्तीफे से ठीक एक साल पहले सन्‌ 1914 में रखी गई।

स्वामी विवेकानन्द

अबाला बोस, बसु की पत्नी

बसु अपने आविष्कारों का पेटेंट कराने के सख्त विरोधी थे। उन्होंने अपने आविष्कारों से कोई व्यक्तिगत लाभ न लेने का निर्णय लिया। शुक्रवार की परिचर्चा में उन्होंने अपने संस्कतक (कोहेरर) को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित किया। 'इलेक्ट्रिक इंजीनियर' नामक पत्रिका ने बसु के इस कार्य पर इन शब्दों में आश्चर्य व्यक्त किया, ''इसकी संरचना के बारे में किसी भी समय कोई गोपनीयता इसलिए नहीं बरती गई, कि संपूर्ण संसार प्रायोगिक कार्यों और संभव हो तो धन उपार्जन के लिए भी इसका उपयोग कर सके। सन्‌ 1901 में वायरलेस उपकरणों का एक बड़ा निर्माता बसु से उनके नए ढंग के रिसीवर के निर्माण के लिए एक आकर्षक प्रस्ताव लेकर मिला। लेकिन बसु ने वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। बसु की एक अमेरिकी मित्र सारा बुल (उन्हें श्रीमती ओले बुल के नाम से भी जाना जाता है) बसु को उनके गैलेना रिसीवर का पेटेंट दाखिल करने के लिए राजी करने में सफल हो गईं। पेटेंट के लिए आवेदन पत्र 30 सितंबर 1901 को दाखिल किया गया और 29 मार्च 1904 को उन्हें पेटेंट अधिकार (अमेरिकी पेटेंट नं. 7,55,840) मिल भी गया। लेकिन बसु ने उस अधिकार का उपयोग नहीं किया, और उसे समाप्त हो जाने दिया।

रायल इन्स्टीट्यूशन में शुक्रवारी सायंकालीन भाषण देते हुए

बसु के विद्युत्‌–तरंग ग्राहक में एक अनूठी क्षमता थी। काफी समय तक प्रयोग में लाए जाने के बाद वह ''थकान'' के चिन्ह प्रदर्शित करता था, पर कुछ आराम देने के बाद उसकी मूल संवेदनशीलता ''पुनः प्राप्त'' की जा सकती थी। इससे प्रभावित होकर बसु ने उस परिघटना का क्रमबद्ध अध्ययन करने का फैसला किया। उन्हें विश्वास होने लगा कि धातुओं में भी संवेदना होती है। धातुओं के बाद उनका ध्यान पौधों की ओर गया। उन्होंने पाया कि पौधों में उनके प्रयोगों के प्रति धातुओं की तुलना में अधिक अनुकूल प्रतिक्रिया होती है। बसु ने सोचा कि उनके हाथ ब्रह्मांड में निर्जीव और जीव के बीच व्याप्त एकात्मकता का सूत्र लग गया है, और उन्होंने स्वयं को इस काम में पूरी तरह समर्पित कर देने का फैसला किया।

सन्‌ 1900 में बसु ने पेरिस में भौतिकविदों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस के सामने 'अकार्बनिक और जीवित पदार्थों की प्रतिक्रियाओं में समानता'' के बारे में अपना लेख पढ़ा। विज्ञान के इतिहास में किसी ने पहली बार उत्तेजनाओं के प्रति जीवित उतकों और अकार्बनिक पदार्थों की प्रतिक्रियाओं को एक–दूसरे के सामानांतर रखकर उनकी तुलना की थी। कांग्रेस को प्राप्त हुए लेखों में से बसु के लेख को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया। उसे कांग्रेस की कार्यवाहियों के अंतर्गत प्रकाशित किया गया। भारत में कई लोगों का मानना है कि बसु ने पूर्वी विश्व की इस सनातन खोज को एक नया वैज्ञानिक आवेग दिया था कि जीवन के सभी रूपों में मूलभूत एकता है। स्वामी विवेकानंद जो कि उन दिनों पेरिस में थे, कांग्रेस में बसु का भाषण सुनने के लिए गए थे। कांग्रेस के अपने अनुभव के बारे में उन्होंने लिखा : 'यहां पेरिस में धरती के सभी कोनों के महान लोग अपने–अपने देशों के गौरव का उद्‌घोष करने के लिए एकत्र हुए हैं। यहां विद्वानों की प्रशंसा होगी, और उसकी गूंज से उनका देश भी महिमामंडित होगा। ओ, मुझे जन्म देने वाले देश! संसार के सभी भागों से एकत्र हुए इन अद्वितीय लोगों में तुम्हारा प्रतिनिधि कहां है? इस महान्‌ सम्मिलन के बीच तुम्हारा एक वीर सपूत, एक युवक खड़ा है, जिसके शब्दों ने यहां उपस्थित श्रोताओं को चौंका दिया है, और वे उसके सभी देशवासियों को पुलकित कर देंगे।'' टैगोर ने बसु के पास अपनी प्रशंसा को एक कविता के रूप में भेजा।

ब्रैडफोर्ड (इंगलैंड) में ब्रिटिश एसोसिएशन के भौतिक विभाग की बैठक में सितंबर 1900 को बसु ने वैसा ही लेख पढ़ा, जैसा उन्होंने पेरिस कांग्रेस में पढ़ा था। वहां भी भौतिक विज्ञानियों ने उनके विचारों की काफी प्रशंसा की। ब्रैडफोर्ड की बैठक के बाद बसु बीमार पड़ गए और दो महीने तक बिस्तर पर ही पड़े रहे। ठीक होने पर लार्ड रेले और सर जेम्स डेवर (1842–1929) जैसे उनके मित्रों और अध्यापकों ने उन्हें रायल इंस्टीट्यूशन की डेवी–फैराडे प्रयोगशाला में काम करने के लिए बुलाया। बसु ने रायल इंस्टीट्यूशन की शुक्रवार की सायंकालीन परिचर्चा में अपना दूसरा व्याख्यान 10 मई, 1901 को दिया। इस बार उनका व्याख्यान जीवित और निर्जीव पदार्थों में उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया के बारे में उनके शोधकार्यों पर आधारित था। भाषण की काफी प्रशंसा की गई। बसु के विचारों का विरोध सबसे पहले 6 जून, 1901 को जॉन बर्डन सैंडर्सन और आगस्टस वैलर ने किया। उन दोनों ख्यातिप्राप्त पादप–कायिक–विज्ञानियों ने बसु के विचारों का विरोध उस समय किया, जब बसु रायल सोसायटी में अपना लेख पढ़ रहे थे। उनके द्वारा की गई आलोचना के कारण रायल सोसायटी ने बसु का लेख प्रकाशित नहीं किया। उसके बाद बसु ने अपने सिद्धांत की पुष्टि के लिए प्रयोग जारी रखने के उद्देश्य से लंदन में ही रुकने का फैसला किया। वह किसी तरह अपनी प्रतिनियुक्ति की अवधि बढ़वाने में सफल हो गए। बसु को इंगलैंड के ही एक विश्वविद्यालय में काम करने का प्रस्ताव मिला, पर उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। इंगलैंड में दो साल बिताने के बाद उन्होंने भारत

लौटने का फैसला किया।

कलकत्ता लौटने के बाद बसु ने जीव और निर्जीव पदार्थों की प्रतिक्रिया एवं वनस्पति कोशिकाओं की क्रियात्मक विशेषताओं तथा जंतु कोशिकाओं के व्यवहार में समानता के बारे में अपना काम जारी रखा। उन्होंने अपनी खोज के परिणामों को लेख की शक्ल में व्यक्त किया।

बसु ने दर्शाया कि वनस्पतियों के उतक उष्मीय, यांत्रिक वैद्युत आघात तथा रासायनिक एवं औषधीय उत्तजनाओं जैसी विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाएं प्रदान किए जाने पर जंतु–उतकों जैसी ही वैद्युत प्रतिक्रियाएं देते हैं। उन्होंने यह भी दर्शाने की कोशिश की कि कुछ अकार्बनिक प्रणालियों में भी उत्तेजनाओं के प्रति ऐसी ही वैद्युत प्रतिक्रियाएं देखी जा सकती हैं अपनी खोजों के लिए बसु ने कई नए और अतिसंवेदनशील उपकरणों का निर्माण किया। इनमें से अति महत्वपूर्ण उपकरण था आरोहमापी (क्रेस्कोग्राफ)। इस उपकरण का निर्माण पौधों की वृद्धि मापने के लिए किया गया था, और इससे प्रति सेकेंड इंच के लाखवें हिस्से तक की वृद्धि को मापा जा सकता था। बसु ने अपने अधिकतर प्रयोग मिनोसा पुडिका और डेस्मोंडियन जिरंस (शाल–पर्णी) पर किए थे। अपनी खोजों के माध्यम से बसु ने भौतिक व्याख्याएं प्रस्तुत करने की चेष्टा की। उन्होंने स्मृति के भौतिक आधारों को दर्शाने वाले प्रतिरूपों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनकी खोजों ने बाद में शरीर–विज्ञान, कालक्रम विज्ञान, साइबर नेटिक्स, औषधि विज्ञान तथा कृषि को प्रभावित किया।

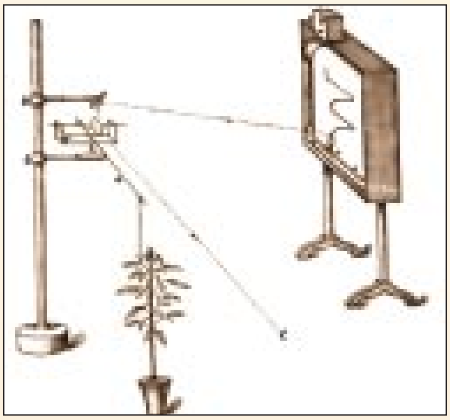
आप्टिकल पल्स–रिकार्डर

बसु शिक्षा सेवा से सन् 1915 में भौतिकी के वरिष्ठ प्रोफेसर के रूप में सेवा निवृत्त हुए। उन दिनों के नियमों के अनुसार उन्हें सन् 1913 में ही रिटायर हो जाना चाहिए था, क्योंकि तब लोग पचपन वर्ष की वायु में ही सेवा निवृत्त कर दिए जाते थे। लेकिन बंगाल सरकार ने प्रेसीडेंसी कालेज में उनकी सेवाओं और उनकी वैज्ञानिक उपलब्धियों को ध्यान में रखकर उनका कार्यकाल दो साल के लिए बढ़ा दिया। सरकार ने उन्हें पेंशन देने के बजाय पूरा वेतन देकर 'सेवा मुक्त' प्रोफेसर का दर्जा भी दे दिया। इस तरह प्रेसीडेंसी कालेज से उनका संबंध स्थाई तौर पर बना रहा। सेवा निवृत्ति के बाद भी उनके शोध कार्य में बाधा नहीं पहुंची। उन्होंने वनस्पतियों की क्रियात्मकता से संबंधित अपना शोधकार्य अपने घर में ही स्थापित एक प्रयोगशाला में जारी रखा। उसी बीच वह एक शोध संस्थान की स्थापना की तैयारियों में भी लगे रहे। उस संस्थान की स्थापना समारोह 23 नवंबर 1917 को आयोजित किया। संस्थान की धर्मादाय निधि के रूप में बसु ने 11 लाख रुपए एकत्र किए थे। उनकी इस कोशिश में उनके मित्र रवीन्द्र नाथ टैगोर ने काफी मदद की थी। बसु इस संस्थान के आजीवन–निदेशक बने। इस संस्थान की स्थापना के लिए उन्हें प्रेरित करने वाले विचारों को सार रूप में प्रस्तुत करने वाला उनका उद्घाटन भाषण वास्तव में प्रेरणादायक था। यहां उनके भाषण का एक अंश प्रस्तुत है :

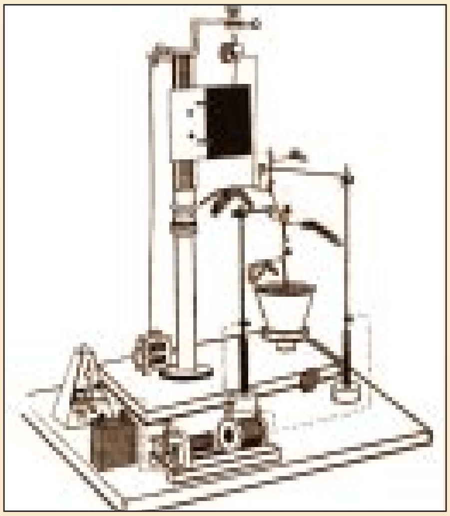
रेसोनेन्ट रिकार्डर का सामान्य दृश्य

''मैं आज इस संस्थान को समर्पित करता हूं... ..... यह केवल प्रयोगशाला नहीं, बल्कि एक मंदिर है...... इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य विज्ञान की उन्नति के साथ ही ज्ञान का प्रसार भी है। हम इस ज्ञान–गृह के विशाल कक्ष – यानी इसके व्याख्यान कक्ष में उपस्थित हैं। किसी भी शोध संस्थान के लिए असामान्य माने जा सकने वाले विस्तार के इस आकार को शामिल करके मैंने विज्ञान के उन्नयन को जन–सामाजिक जीवन में इसके यथासंभव विस्तार के साथ स्थाई रूप से जोड़ा है और ऐसा आने वाले समय में शिक्षा संबंधी किसी रुकावट के बिना सभी जातियों और भाषाओं के लोगों तथा पुरुषों और महिलाओं के बीच समान रूप से हमेशा के लिए होगा।

यहां दिए जाने वाले भाषण पुराने पड़ गए ज्ञान का दुहराव भर नहीं होंगे। वे पंद्रह सौ श्रोताओं के समक्ष यहां की गई उन खोजों की घोषणा करेंगे, जो लोगों के समक्ष पहली बार प्रदर्शित की जाएंगी। इस तरह हम विज्ञान के विकास और प्रसार में सक्रिय भागीदारी करके अध्ययन के इस महान् स्थान के श्रेष्ठतम लक्ष्य को निरंतर बरकरार रखेंगे।''ट्रांजेक्शंस ऑफ इंस्टीट्यूट'' के नियमित प्रकाशन के जरिए भारत के ये योगदान पूरी दुनिया तक पहुंचेंगे। इस तरह आविष्कार सार्वजनिक संपत्ति बन जाएंगे। स्थाई कर्मचारियों के अलावा अपने कामों के जरिए विशेष क्षमता का परिचय दे चुके, और शोध कार्यों के लिए अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर चुके चुने हुए विद्वान भी यहां काम करेंगे। उन्हें व्यक्तिगत रूप से प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। इसलिए उनकी संख्या को अनिवार्य रूप से सीमित रखा जाना चाहिए। लेकिन मूलभूत महत्व संख्या का नहीं, बल्कि गुणवत्ता का है।

''मेरे पिता की इच्छा थी कि अपनी सीमित आवास सुविधा के दायरे में जिस सीमा तक संभव हो, उस हद तक संस्थान की सहूलियतें पूरे देश के शोधकर्ताओं को उपलब्ध होनी चाहिए। इस संबंध में मैं अपने देश की परंपरा का पालन करने की चेष्टा कर रहा हूं, जिसने पचीस सौ साल पहले नालंदा और तक्षशिला जैसे अपने प्राचीन ज्ञान केंद्रों के परिसर में संसार के विभिन्न भागों के विद्वानों का स्वागत किया था। अमरत्व का बीज वस्तु में नहीं विचार में; अधिकार और उपलब्धियों में नहीं बल्कि आदर्शों में मिलेगा। भौतिक वस्तुओं के अर्जन से नहीं, बल्कि विचारों और आदर्शों के उदारतापूर्वक प्रसार से ही मानवता की सच्ची इमारत खड़ी की जा सकेगी। पार न किए जा सके महासागरों से घिरा यह महान साम्राज्य अशोक का था; उसने यथासंभव दान देकर इस संसार का उद्धार करना चाहा किन्तु एक ऐसा समय आया जब उसके पास और कुछ भी देने को नहीं था – सिवाय अमलकी के आधे बचे हुए फल के। उसके अधिकार में यही आखिरी चीज बची थी, और तब उसने व्यथा से चीख कर कहा था कि उसके पास देने के लिए और कुछ नहीं है, इसलिए इस आधे अमलकी को उसके अंतिम उपहार के रूप में स्वीकार किया जाए।

''संस्थान की छजली पर अशोक की अमलकी का प्रतीक अंकित है, और सबसे ऊपर अंकित है वज्र का चिन्ह। पवित्र निष्कलंक दधीचि ने इस दिव्य अस्त्र के निर्माण के लिए अपना जीवन दान दे दिया था ताकि पाप का विनाश और सदाचार को प्रतिष्ठित किया जा सके। हमारे पास अर्पित करने के लिए अब आधी अमलकी ही बची है। लेकिन अतीत एक महान भविष्य के रूप में पुनर्जन्म लेगा। हम आज यहां खड़े हैं, और कल से काम शुरू करेंगे, ताकि अपने जीवन के प्रयासों और भविष्य में अटल विश्वास के दम पर उस महानतम भारत के निर्माण में सहयोग दे सकें, जिसे अभी

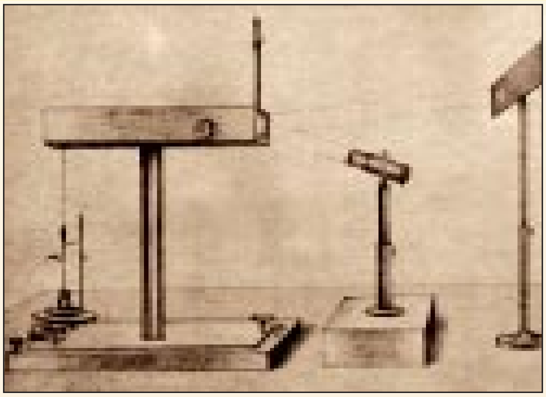

पौधों के अप्रत्यक्ष विकास के आकार को दस मिलियन गुना बढ़ाकर दिखाने वाला चुम्बकीय क्रेस्कोग्राफ

निर्मित होना है।''

बसु के उद्घाटन भाषण का भारत ही नहीं विदेशों में भी गहरा प्रभाव पड़ा। लंदन के प्रमुख अखबार 'टाइम्स' ने लिखा : ''सर जगदीश ने (भारत में) नवजागरण लाकर उल्लेखनीय योगदान दिया है। भारतीयों का अपने कुछ ऐसे लोगों पर गर्व करना उचित ही है, जिन्होंने उनसे संबंधित गतिविधियों के क्षेत्र में विश्व स्तरीय प्रतिष्ठा अर्जित की है, और जन भावना में इस गर्व की प्रबल अभिव्यक्ति होती है।'' शोध संस्थान में भारतीय स्नातकोत्तर छात्रों के एक समूह ने शोध के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है। संस्थान की कार्यवाहियों का प्रकाशित विवरण यह दर्शाता है कि इस प्रतिष्ठित बंगाली के नेतृत्व में भारतीय विज्ञान के ज्ञानकोष में उल्लेखनीय प्रगति हो रही है, और सर जगदीश के काम शुरू करने के समय व्यक्त की गई आशंका के विपरीत इस क्षेत्र में भारतीय और पश्चिमी मस्तिष्क में कोई अंतर नहीं है।'' द एथेनियम ने लिखा : ''शुद्ध विज्ञान के क्षेत्र में एक संस्थान की स्थापना भारतीय इतिहास की एक घटना है। उसकी गतिविधियों के पहले फल के रूप में कार्यवाहियों के विवरण के प्रकाशन ने दर्शा दिया है कि यह संपूर्ण विज्ञान के इतिहास की एक घटना भी है।''

सन् 1903 में ब्रिटिश सरकार ने बसु को दिल्ली में कमांडर ऑफ द आर्डर ऑफ इंडियन एंपायर (सी.आई.ई.) की उपाधि दी। सन् 1912 में ब्रिटिश सम्राट के सिंहासनारोहण के अवसर पर उन्हें कमांडर ऑफ द स्टार आफ इंडिया (सीएसआई) की उपाधि दी गई। सन् 1916 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नाइट की उपाधि भी दी। बसु को सन् 1928 में रायल सोसायटी का फेलो भी नियुक्त किया गया।

23 नवंबर 1937 को गिरीडीह (बिहार) में बसु की मृत्यु हो गई।

इस लेख के अंत में गेडेस के इस कथन को उद्धृत करना उचित होगा : ''जो भारतीय युवक स्वयं को विज्ञान की सेवा, या किसी अन्य उच्च स्तरीय बौद्धिक लक्ष्य, अथवा किसी सामाजिक अभिप्राय के लिए विकसित करने की इच्छा रखते हैं, उन सबके लिए जगदीश चन्द्र बसु का जीवन सूक्ष्म और सघन निरीक्षण का विषय है। यह संभव है कि लंबी–चढ़ावदार राह को तय करने के लिए बाद, भारी कीमत चुका कर धीमी गति से मिली सफलता से पूरी तरह अनजान होने के कारण वे केवल अंत में मिली विजय को देख कर यह निष्कर्ष निकाल लें कि बौद्धिक धरातल पर कोई सफल रचना करने के लिए अच्छी प्रयोगशाला अथवा अन्य भौतिक सुविधाएं ही आवश्यक हैं। लेकिन सच्चाई कुछ और ही है। रास्ते में खड़ी अनगिनत बाधाओं ने बसु को अत्यंत धैर्य के साथ हर संभव पुरुषोचित व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया; जो उनमें जीवन के किसी महान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक चरित्र की संपूर्ण शक्ति और विचारों के विस्तार के रूप में प्रकट हुआ। इन संगियों की महान् जीवन यात्राएं युवा भारत को विचार और कर्म के स्तर पर निर्भीक होकर श्रेष्ठ कार्यों में जुटने के लिए प्रेरित करेंगी। वे न केवल भारत के अतीत की उदात्त बौद्धिक परंपरा को पुनर्जीवित करने, बल्कि उन परंपराओं को आधुनिक काल से जोड़ने के लिए भी प्रेरित होंगे, और आने वाले युग से उनके जीवंत संबंधों को स्थापित करने की राह में अपने मन–मस्तिष्क के समक्ष उपस्थित होने वाली चुनौतियों को समझ सकेंगे।''

## बसु द्वारा लिखी गई पुस्तकें :

1. रिस्पांस इन द लिविंग एंड नान लिविंग, लांगमैन्स, ग्रीन एंड कं., लंदन, 1902
2. प्लांट रिसपांस ऐज़ ए मींस ऑफ फ़िज़िआलाज़िकल इनवेस्टीगेशंस, लांगमैन्स, ग्रीन एंड कं., लंदन, 1906
3. कंपरेटिव इलेक्ट्रान–फ़िज़िऑलाज़ी, लांगमैन्स, ग्रीन एंड कं., लंदन, 1907
4. रिसर्चेज़ ऑन इर्रिटेबिलिटी ऑफ प्लांट्स, लांगमैन्स, ग्रीन एंड कं., लंदन, 1913
5. कलेक्टेड फिज़िकल पेपर्स, लांगमैन्स, ग्रीन एंड कं., लंदन, 920
6. प्लांट आटोग्राफ्स एंड देयर रिविलेशन, द मैकमिलन कंपनी, न्यूयार्क, 1927
7. अव्यक्त (बंगला में), बंगीय विज्ञान परिषद, कलकत्ता, 1921
8. फ़िज़िऑलाज़ी ऑफ एसेंट सैप, लांगमैंस, ग्रीन एंड कंपनी, लंदन, 1923
9. लेटर्स टू रविन्द्रनाथ टैगोर (बंगला में – पत्राबली), डी. सेन द्वारा संपादित और व्याख्यायित

## बसु से संबंधित पढ़ने योग्य अन्य पुस्तकें :

1. गेडेस पी., द लाइफ एंड वर्क्स ऑफ सर जगदीश सी. बोस, लांगमैंस, ग्रीन एंड कंपनी, लंदन, 1920 (एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, नई दिल्ली – 2000 द्वारा पुनर्प्रकाशित)

   इस लेख में प्रयुक्त कुछ चित्र इसी पुस्तक से लिए गये हैं।
2. बोस, डी.एम., जगदीश चन्द्र बोस इन बायोग्राफ़िकल मेमायर्स ऑफ फेलोज़ ऑफ द नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज ऑफ इंडिया, खंड एक, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 1966
3. दासगुप्ता, एस. जगदीश चन्द्र बोस एंड द इंडियन रिस्पांस टू वेस्टर्न साइंस, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, नई दिल्ली
4. सेन डी, द इंडियन साइंस पायनियर, जगदीश चन्द्र (बंगला में), इंडो–जीडीआर–फ्रेंडशिप सोसाइटी, कलकत्ता, 1984
5. नंदी, ए. आल्टरनेटिव साइंसेज़, क्रिएटिविटी एंड आथेंटिरिटी इन टू इंडियन साइंटिस्ट्स, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1995 (द्वितीय संस्करण)
6. बोस, एस.एन. जगदीश चन्द्र बोस, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1970
7. सिंह, जगजीत, सम एमीनेंट इंडियन साइंटिस्ट्स, पब्लिकेशंस डिवीजन, नई दिल्ली, 1966
8. गुप्ता, मनोरंजन, ए जगदीश चन्द्र बोस : ए बायग्राफी, भारतीय विद्या भवन, बंबई, 1964
9. सालवी, दिलीप एम., जगदीश चन्द्र बोस, द फर्स्ट मार्डर्न साइंटिस्ट, रूपा एंड कंपनी, नई दिल्ली 2002

• • •

# अदरक : एक खुशबूदार मसाला

टी.वी. वेंकटेश्वरन

> यदि मेरे पास इस दुनिया में एक पेनी भी होता तो मैं जिंजर–ब्रेड खरीदने के लिए दे देता – शेक्सपियर – 'लव्स नेव्हर लॉस्ट' उपन्यास में।

जी हां! दादी मां सचमुच सही थीं। जब हम बच्चे थे और हमें असह्य पेटदर्द या बुखार होने पर वे दवा देने की बजाय अदरक का टुकड़ा या अदरक की चाय देती थीं, तो उन्हें पता था कि वे क्या कर रही थीं। हो सकता है उन्हें यह न पता रहा हो कि अदरक से पेट दर्द कैसे ठीक हो जाता है, लेकिन वे जानती थीं कि अदरक जरूर कमाल दिखाएगा और ऐसा होता भी था।

वास्तव में, भारत व चीन में हजारों वर्षों से अदरक औषधीय रूप में तथा खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग किया जाता रहा है। ऐसा माना जाता है कि यह मोशन सिकनेस से लेकर ऐथ्लीट्स फूट जैसे रोगों के उपचार में सहायक होता है। यह भी कहा जाता है कि इसके अप्रदाहक (anti inflammatory) गुण रूमेटॉइड आर्थ्राइटिस से होने वाले दर्द को कम करते हैं तथा अदरक की चाय महिलाओं में महावारी संबंधी अनियमितता दूर करने में सहायक होती है।

अदरक (Ginger) का पौधा भारत व चीन में ही मूलतः उत्पन्न हुआ है। अधिकतर भाषाओं में अदरक का नाम प्राकृत के सिंगाबेरा या संस्कृत के शृंगावेरा शब्द से निकला है। शृंगावेरा का मतलब होता है 'हिरन के सींग जैसा'। ग्रीक में इसे जिग्जीबेरिस तथा लैटिन में जिंजिबर कहा गया। प्राचीन तथा मध्यकालीन अंग्रेजी में इसे जिंजिफर तथा जिंजिवेयर कहा जाता। इसी प्रकार प्राचीन फ्रेंच में इसे जिंजिविए कहा गया। यह दुनिया में उपयोग किए जाने वाले सबसे प्राचीन मसालों में से एक है। कंफ्यूशियस की रचनाओं, कुरआन तथा औषधियों संबंधी प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है।

अदरक का वैज्ञानिक नाम जिंजिबर ऑफिसिनले रॉस्क (*Zingiber officinale Rasc*) है तथा यह जिंजिबेरासिए (*Zingiberaceae*) वर्ग से संबंधित है। दक्षिण एशिया मूल का यह मसाला भोजन, कैंडी, शराब (जैसे जिंजर बीयर), परिरक्षण के रूप में तथा एशियाई खाद्य पदार्थों में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता हैं अंग्रेज वनस्पति विज्ञानी विलियम रॉस्कोए (1753–1831) ने 1807 में एक प्रकाशन में अदरक के पौधे को जिंजिबर ऑफिसिनले नाम दिया। जिंजर वर्ग एक उष्णकटिबंधी समूह है जिसमें 1200 वनस्पति प्रजातियां पायी जाती हैं। इसी प्रकार जिंजिबर वर्ग में सुगंधित जड़ी–बूटियों वाली लगभग 85 प्रजातियां पायी जाती हैं।

लगभग 2500 ईसा पूर्व ही अदरक के उपयोग के पुरातात्विक साक्ष्य मिलते हैं। यूनानियों व रोमन लोगों में मिर्च के बाद अदरक ही सबसे पसंदीदा मसाला था। प्राचीन दुनिया के महान् यात्रियों – फोनीशियनों द्वारा यह रोम तथा युनान के लोगों तक पहुंचा। दूसरी शताब्दी में लाल सागर द्वारा इसका आयात कर अलैक्जैंड्रिया लाया जाता था जहां इस पर रोमन कर लगाए जाने के प्रमाण हैं। प्राचीन रोमनों ने इस मसाले को दुनिया के अन्य जगहों पर पहुंचाया। नौवीं शताब्दी तक अदरक यूरोप में भी लोकप्रिय हो चुका था तथा प्रत्येक सभ्रांत डिनर टेबल का हिस्सा बन चुका था।

अदरक का कंद काफी समय तक खराब नहीं होता अतः इसे काफी दूरी तक आसानी से ले जाया जा सकता है। इस प्रकार अदरक एक व्यापक रूप से प्रचलित मसाला है जो उष्णकटिबंधी तथा उपोष्णकटिबंधी देशों में पाया जाता है। जैसे – अमेरिका में जमैका, अफ्रीका में सियरा लियोन प्रशांत क्षेत्र में जापान तथा आस्ट्रेलिया में।

## परंपरागत औषधि के रूप में अदरक :

अदरक का शुद्ध अर्क पेट दर्द, मिचली, अम्लशूल, पेट की मरोड़ तथा दस्त के उपचार में सहायक होता है। सुबह–सुबह अदरक युक्त चाय पीने से आलस दूर होता है। कोलस्ट्रॉल की मात्रा नियंत्रित रखने में भी अदरक उपयोगी होता है। अदरक पाचन में भी सहायक होता है क्योंकि इसमें हमारे पाचन तंत्र में पाए जाने वाले पाचक एंजाइम के समान ही एक यौगिक पाया जाता है जो संभवतः प्रोटीन की अधिकता वाले गरिष्ठ भोजन को आसानी से पचाने में मदद करता है। अदरक को चबाने से दांत दर्द में भी राहत मिल सकती है। अदरक का गर्म पेय सर्दी व बुखार दूर करने में भी प्रभावी होता है। बंद नाक को खोलने में यह सहायक होता है तथा यह भी कहा जाता है कि रक्त से विषाक्त पदार्थों को हटाने के लिए यह यकृत को उद्दीपित करता है। गर्म पानी में एक चम्मच अदरक व नीबू का रस तथा एक चम्मच शहद मिलाकर एक स्वादिष्ट पेय तेयार किया जा सकता है जो पाचन में सहायक होता है। रात्रिकालीन सर्दी के लक्षणों से छुटकारा पाने के लिए अदरक का उपयोग सर्वज्ञात है। उत्तरी भारत के अधिकांश ढाबों में, विशेषकर जाड़े के मौसम में, सुबह की चाय में हल्का सा नमक व अदरक का रस मिलाकर सर्व किया जाता है।

दस्त, पेट में दर्द, सर्दी या सिरदर्द के लिए एक कप गर्म पानी में एक चम्मच ताजा अदरक का रस मिलाकर चाय बनाएं। बाहर जाते समय या यात्रा के दौरान या यात्रा के बाद दस्त से बचने के लिए यह चाय पीएं। द लांसेट में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार डी.बी. माउरे व डी.ई. क्लेसन नाम के अनुसंधानकर्ताओं ने यह पाया कि 940 मिलीग्राम सूखे अदरक के पाउडर वाला एक कैप्सूल जब दस्त से पीड़ित एक व्यक्ति को दिया गया तो उससे दस्त के लिए उपयोग किए जाने वाले हाइमेनहाइड्रिनेट नामक एंटीहिस्पामिन की तुलना में बेहतर परिणाम मिला। यदि किसी को ऐथलीट्स फूट हो तो वह उक्त प्रकार की चाय ठंडी कर उससे अपने पैर को भिगोएं। उसकी कवर रोधी गुण जलन व खुजली पसीना निकलने की समस्या दूर करती है, कामोत्तेजक का कार्य करती है तथा श्वास को तरो–ताजा रखती है। एक चित्त शांतिकारक के रूप में अदरक में उपस्थित सिनेओल तनाव से मुक्ति में मददगार होता है। अतः दिन भर कठोर परिश्रम करने के बाद अदरक–नीबू का शरबत पीना फायदेमंद हो सकता है। यह जरूर सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि अदरक का जो पेय हम ले रहे हैं वह वास्तव में अदरक से बना हो। आजकल के अधिकांश सोडा पेय में कृत्रिम सुगंध डाली जाती है तथा वे अदरक के विकल्प नहीं हो सकते। अदरक की कंद कफ को दूर करने, गैस से छुटकारा तथा ऊतकों को मजबूत करने के लिए भी ली जाती है। एशिया में दमा, श्वास की तकलीफ, कान दर्द, दस्त, मिचली तथा कै के उपचार की औषधियों में अदरक का इस्तेमाल किया जाता है। इसके अतिरिक्त होम्योपैथिक चिकित्सा यौन विकार में भी इसका उपयोग करने का सलाह देते हैं।

## अदरक की जड़ :

अदरक का पौधा सीधा, एक से तीन फीट तक बढ़ने वाला बारहमासी पौधा होता है। इसका तना दो पंक्तियों वाली पत्तियों से घिरा होता है। इसके गदा की शक्ल वाले पीले–बैंगनी फूलों के निचले भाग में चटकीली हरा–पीली पत्ती होती है।

वास्तव में, अदरक की जड़ वास्तविक रूप से एक जड़ नहीं, बल्कि एक प्रकंद या भूमिगत तना है। ताजा रहने पर यह हिरन के सींग जैसी विशिष्ट आकृति वाला होता है। सूखा अदरक प्रायः सफेद या हल्के भूरे पाउडर के रूप में बेचा जाता है। अदरक की पत्तियां विशेष अवसरों पर सुगंध के लिए भी इस्तेमाल की जाती हैं। अदरक की कंद जिसमें 'हाथ' कहलाने वाली गांठ होती हैं, अच्छी मानी

जाती है यदि उसकी भूरी त्वचा नरम हो, सतह कठोर हो तथा वजन ज्यादा हो। रोचक तथ्य यह है कि जहां अदरक की प्रत्येक गांठ को 'हाथ' कहा जाता है, वहीं इसके प्रत्येक बहि:सरण को 'उंगली' कहते हैं। इसकी खेती लगभग वर्ष भर होती है। अदरक की पांच–छह महीने ही पुरानी फसल मुख्यत: अदरक के सिरप या कैंडी बनाने के लिए उपयोग की जाती है। इससे देर की फसल ताजे अदरक के रूप में बेची जाती है। अदरक जितनी ही लंबी अवधि तक जमीन के अंदर रहता है। उतना ही तीखा व मसालेदार हो जाता है तथा घरेलू उपचार के लिए उतना ही उपयोगी होता है।

अदरक न केवल पाचक स्वास्थ्य से जुड़ा है बल्कि इसके पोषणकारी लाभ भी सर्वज्ञात हैं। जड़ के रूप में इसकी खुशबू काफी अच्छी होती है। सूखे अदरक में 8.6 प्रतिशत प्रोटीन, 6.4 प्रतिशत वसा, 66.5 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 5.7 प्रतिशत भस्म, 0.1 प्रतिशत कैल्शियम, 0.15 प्रतिशत फॉस्फोरस, लौह, सोडियम, पोटैशियम, विटामिन ए, थायामीन, राइबोफ्लेविन, नियासीन तथा एक्कॉर्बिक अम्ल होता है। इसके प्रति 100 मिलीग्राम का उष्मीय मान 380 कैलोरी होता है।

## अदरक का रसायनशास्त्र:

अदरक का तीखा स्वाद दो रसायनों के दो अलग–अलग समूहों से उत्पन्न होता है; इसे मुंह में रखने पर मुख्यत: अवाष्पशील तीखे रसायनों जैसे जिंजरॉल्स तथा जिंजरोन के कारण तीखापन प्रकट होता है जबकि नाक में तीखापन वाष्पशील तेलों, टर्पीनॉयड्स के मिश्रण के कारण प्रकट होता है, जो इसे विशिष्ट सुगंध प्रदान करते हैं तथा स्वाद को बदल देते हैं।

अदरक का तीखापन मुख्यत: जिंजरॉल्स के कारण होता है जो शोगाओल्स, जिंजरोन जैसे कम तीखे यौगिकों के रूपांतरण के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। तीखे जिंजरॉलून संग्रहण के दौरान कम तीखे शोगाओल्स को अवक्रमित कर देते हैं; अत: जिंजराल की अधिक मात्रा तथा अधिक तीखापन अदरक के ताजे होने व गुणवत्ता युक्त होने का सूचक है। (6) जिंजरॉल तथा (6) शोगाओल के अनुपात को मापने के लिए हाई परफार्मेंस लिक्विड क्रोमैटोग्राफी (एचपीसीएल) का उपयोग किया जाता है। इससे तीखेपन में उतनी ही ज्यादा कमी होती है। लगभग 2–3 प्रतिशत अदरक का तेल सूखे कंद से वाष्प आसवन द्वारा प्राप्त किया जाता है।

हालांकि अदरक में सुगंध जिंगरोन नामक एक रसायन के कारण होता है जो कि सरसों के तेल में भी सुगंध का कारक होता है। इस रसायन की रचना एक हद तक वैनिलीन के समान ही होती है। जिंजरोन में एक हाइड्रोकार्बन पुच्छ से वैनिलीन आधार वलय जुड़ा होता है। यह जिंगरोन की विलेयता को बहुत अधिक नहीं घटाता क्योंकि इसमें एक कार्बोनिल समूह (C=0) होता है जो जल के अणु के साथ मजबूत हाइड्रोजन बंध बना सकता है। जिंगरोन जल में कम घुलनशील होता है, वसाओं व तेलों में यह आसानी से घुल जाता है।

### अदरक की रोटी

'जिंजर ब्रेड मैन' गाने या नर्सरी परी कथाओं में अदरक की रोटी का उल्लेख मिलता है। वास्तव में, अदरक की रोटी यूरोपीय देशों में बनायी जाती थी। कुछ स्थानों पर यह मुलायम, स्वादिष्ट, मसालेदार के होती थी; कुछ स्थानों पर कुरकुरी, फीकी तथा कुछ जगहों पर गर्म, मोटी, भूरी एवं चौकोर आकार में। इसे नीबू की चटनी या क्रीम के साथ परोसा जाता था। यह कभी हल्की, कभी भारी, कभी मीठी तो कभी मसालेदार हो सकती थी, लेकिन इसे विविध आकृतियों में काटा जाता था जैसे आदमी, औरत, तारे, जानवर तथा रंगीन सजावट की जाती थी, और इस पर सफेद चीनी छिड़क दी जाती थी।

ग्यारहवीं शताब्दी के अंत में लगभग पूरे पश्चिमी यूरोप में अदरक की रोटी पकायी जाती थी। संभवत: पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र के युद्ध से लौटने वाले योद्धाओं ने इसका प्रसार किया। शुरुआती दौर से ही अदरक की रोटी एक स्वदिष्ट खाद्य पदार्थ के रूप में लोकप्रिय रही है। मध्यकालीन यूरोप में लगने वाले कई मेले 'जिंजर ब्रेड फेयर' कहलाते थे। यही नहीं, इग्लैंड में अदरक की रोटी से बने खाद्य पदार्थ 'फेयरिंग' नाम से लोकप्रिय हुए जिसका मूल अर्थ था मेले में मिली या मेले से लायी गयी वस्तु। यह रोटी विभिन्न मौसमों के अनुसार निश्चित आकृति की होती थी : ईस्टर मेले में बटन व फूल के आकृति की रोटी तथा बसंत के मेलों में जानवरों व चिड़ियों के आकार की रोटी मिलती थी। इग्लैंड के कई गांवों में एक अनोखी परंपरा थी जिसके अनुसार अविवाहित महिलाओं को 'अदरक की रोटी से बने पति' को खाना होता था ताकि उन्हें शीघ्र वर मिल सके।

19वीं शताब्दी के दौरान अदरक की रोटी को आधुनिक स्वरूप दिया गया। ग्रिम भाइयों को जर्मन परी कथाओं के संग्रह करने के दौरान हेंसेल व ग्रेटल नामक दो बच्चों की कहानी मिली, जिन्हें उनके माता–पिता ने जंगल में निराश्रित छोड़ दिया था। इन बच्चों के घूमते हुए अदरक की रोटी, केक व कैंडी से बना एक घर मिला था।

### अदरक की सर्वश्रेष्ठ किस्म : जमैका अदरक

यद्यपि अदरक की उत्पत्ति दक्षिण एशिया में हुई है, विश्व की सर्वश्रेष्ठ किस्म की अदरक जमैका में उगायी जाती है। ऐसा माना जाता है कि लगभग 1525 में अदरक जमैका पहुंचा। 1547 तक अदरक का निर्यात 22,000 क्विंटल अर्थात् 2.2 मिलियन किलोग्राम तक पहुंच गया था। 1980 में इंटरनेशनल ट्रेड सेंटर द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार जमैका के क्लैरेंडन, मैंचेस्टर, तथा ट्रीलॉनी क्षेत्र में 1100 एकड़ में अदरक के पौधे लगाए गए थे।

जमैका अदरक

जिंगरोन का उच्च अणुभार तथा ध्रुवीय पार्श्व श्रृंखला कार्बोनिल समूह होने से जिंगरोन के अणु इयूजीनोल तथा वैनिलीन अणुओं की तुलना में एक–दूसरे का अधिक आकर्षित करते हैं। अदरक की महक बहुत तीव्र नहीं होती, लेकिन जब यह अपने ग्राही के संपर्क में आता है तो हाइड्रोकार्बन पुच्छ इसे तीव्र सुगंध प्रदान करता है।

यह दावा किया जा सकता है कि एक लोकप्रिय पारंपरिक औषधि के रूप में अदरक के उपयोग का वैज्ञानिक आधार भी है। अदरक के कई लाभदायक औषधीय गुण जिंगरोन की एक एंटी ऑक्सीडेंट के रूप में प्रभावशीलता के कारण हो सकते हैं। जिंगरोन उन मुक्त मूलकों के साथ अभिक्रिया करता है जो ऊतकों को नुकसान पहुंचा सकते हैं। केस वेस्टर्न विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ताओं के अध्ययन से पता चला है कि जिंगरोन युक्त अर्क कुछ त्वचा कैंसर को रोकने में सहायक हो सकता है।

भारत विश्व में अदरक का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। विश्व के कुल अदरक उत्पादन का 50 प्रतिशत भारत में ही होता है। इसके अलावा, जमैकन

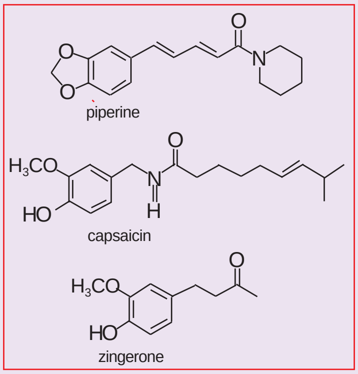


मसालों के इन तीन मूलभूत तत्वों की संरचना में असाधारण समानता होती है। पिपरिन काली मिर्च का एक सक्रिय घटक है, इसी प्रकार कैप्साइसिन मिर्च का तथा जिंगरोन अदरक का सक्रिय घटक हैं प्रत्येक में एक एरोमैटिक रिंग होता है जिससे दो आर्थो ऑक्सीजन परमाणु जुड़े होते हैं (वैनिलीन की भांति), जो या तो एक ईथर – फीनॉल संयोजन (जैसी कैप्साइसिन व जिंगरोन में) या एक एसीटल (जैसे पिपरिन में) के रूप में होते हैं। रिंग के चौथे स्थान पर कार्बोनिल समूह युक्त एक लंबी श्रृंखला होती है। कार्बोनिल समूह कैप्साइसिन व जिंगरोन में एक ही स्थान पर स्थित होता है, यद्यपि कैप्साइसिन एक एमाइड है तथा जिंजरोन एक कीटोन है। पिपरिन में कार्बोनिल श्रृंखला के नीचे स्थित होता है, जबकि यह भी कैप्साइसिन की भांति एक एमाइड है।

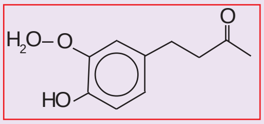

**सारणी : अदरक के तेल की रासायनिक संरचना**

| | रासायनिक घटक | प्रतिशतता |
|---|---|---|
| 1 | जिंजीबर्न | 35 |
| 2 | ए आर कक्यूमीन | 10 |
| 3 | बीटा – सेस्क्वीफीलैंड्रीन | 10 |
| 4 | बीसाबोलेन | 8 |
| 5 | डेक्स्ट्रो – कैम्फीन | 6 |
| 6 | बीटा – फीलैंड्रीन | 3 |
| 7 | 1,8 – सिनेओल | 2 |
| 8 | सिट्राल – ए (जरेनियल), सिट्राल – बी (नेराल), अल्फा – पाइनीन, मिरसीन | अल्प मात्रा |

किस्म के बाद कोच्वि अदरक सबसे अच्छे किस्म की मानी जाती है। भारत से निर्यात किए जाने वाले मसालों की मात्रा में अदरक का चौथा स्थान है। भारत में होने वाले कुल उत्पादन में से 70 प्रतिशत केरल में होता है। चीन की अदरक में तीखापन व सुगंध कम होता है, जिसके कारण इसका निर्यात कम होता है। जापानी अदरक में तीखापन अधिक होता है, लेकिन इसमें विशिष्ट सुगंध की कमी होती है। अन्य दक्षिण एशियाई देशों में भी अच्छे गुणवत्ता की अदरक नहीं होती। इस प्रकार विश्व बाजार में भारतीय अदरक का एक प्रभावी स्थान है। घरेलू उपचार के रूप में अदरक आज भी उतना ही लोकप्रिय हे जितना 2000 वर्ष पहले था।

• • •

---

विज्ञान प्रसार समाचार जारी ......

सौंपी। इस समारोह में बड़ी संख्या में विद्वान, विज्ञान लेखक और लोकप्रिय विज्ञान कार्यकर्ता उपस्थित थे। जिन अन्य सुप्रसिद्ध महानुभावों

श्रोताओं का समूह

ने कार्यक्रम में आकर शोभा बढ़ाई वे थे – प्रो. मलय कुमार बनर्जी, सचिव, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, पश्चिम बंगाल सरकार, प्रो. अंजलि देव मुखर्जी, भूतपूर्व डीन, स्कूल ऑफ लाइफ साइन्सेस, जवाहर लाल नेहरू विश्व विद्यालय।

विज्ञान प्रसार की ओर से डॉ. सुबोध महंती और अमित चक्रवर्ती भी इस समारोह में उपस्थित थे। यह संकलन प्रो. सरदिन्दु शेखर राय द्वारा संपादित किया गया है। विज्ञान प्रसार इसे कोलकाता में मुद्रित कराकर प्रकाशित करने पर विचार कर रहा है।

## ऑन लाइन चैट सेशन

विज्ञान प्रसार की वेबसाइट (www.vigyanprasar.com) पर 'लाइव चैट सेशन' कार्यक्रम का आयोजन लगातार हो रहा है। 27 सितम्बर 2002 को सम्पन्न चैट सेशन 'हड्डियां, कमजोर हड्डियां और अस्थि भंग (फ्रैक्चर्स)' विषय पर था। इस चैट सेशन में सफदर जंग अस्पताल और वर्धमान महावीर मेडिकल कालेज, नई दिल्ली में आर्थोपेडिक सर्जरी के एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. आर.के. चोपरा ने प्रश्नों के उत्तर दिए। देशभर के लगभग तीस व्यक्तियों ने विषय से संबंधित विविध प्रश्न पूछे। समय की कमी के कारण जो लोग इस कार्यक्रम में भाग नहीं ले सके, उनसे अनुरोध किया गया है कि वे अपने प्रश्न ई–मेल से (vigyan@hub.nic.in) भेज दें। जो लोग हमारे भावी चैट सेशन कार्यक्रमों में भाग लेना चाहते हैं, वे भी हमें ई–मेल से सूचित कर सकते हैं।

डॉ. आर.के. चोपरा

• • •

# डिजिटल टेलीविजन

किंकिणी दासगुप्ता मिश्रा

डिजिटल टेलीविजन परंपरागत टेलीविजन का नया क्रांतिकारी रूप है जो उपग्रह या केबल के द्वारा सभी डिजिटल ऑडियो व वीडियो कार्यक्रमों को उच्च गुणवत्ता के साथ दर्शकों तक पहुंचाता है।

रंगीन टी.वी. की शुरुआत के बाद डिजिटल टी.वी. अगला उल्लेखनीय सुधार है। इसमें टी.वी. कंप्यूटर तथा संचार प्रौद्योगिकी को एक साथ समाहित किया गया है। इसके अतिरिक्त लगभग सभी घरों तक पहुंच होने के कारण यह पर्सनल कंप्यूटर की तुलना में ज्यादा प्रभावी हो जाएगा।

डिजिटल टी.वी. का साधारण अर्थ है कि जो सूचनाएं हमें देखने या सुनने को मिलेंगी, वे डिजिटली कूटबद्ध होंगी। इसका मतलब यह है कि जब कोई भी आंकड़ा टी.वी. तक पहुंचेगा तो तस्वीर ठीक उस तरह बनायी जा सकेगी जैसा कार्यक्रम निर्माता चाहेगा। वर्तमान टेलीविजन एक सादृश्य संकेत प्राप्त करते हैं जिसमें तस्वीर व ध्वनि प्रत्यक्ष रूप से आरोहित रहते हैं। यदि संकेत कमजोर होता है या बाधित होता है तो ध्वनि व तस्वीर की गुणवत्ता भी प्रभावित हो जाती है। इस प्रकार से सादृश संकेत विद्युतीय व्यतिकरण से प्रभावित हो जाते हैं, मार्ग में पड़ने वाली भौतिक संरचनाओं से विचलित हो सकते हैं तथा सौर गतिविधि से भी प्रभावित हो सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप चित्रों में छाया तथा स्क्रीन पर अन्य बाधाएं आती हैं। दूसरी तरफ, डिजिटल संकेत 0 से 1 के धारा के रूप में प्रसारित होता है। इसमें यदि रास्ते में संकेत बाधित भी हो जाते हैं तो भी 0 से 1 की धारा सुरक्षित रहती है जिससे टेलीविजन को सही तस्वीर व ध्वनि प्राप्त होती है। साथ ही, डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग से उतनी ही जगह में अधिक चैनल प्रसारित किए जा सकते हैं।

1990 में टी.वी. कार्यक्रम निर्माण प्रक्रिया के कई चरणों में डिजिटल प्रौद्योगिकी का प्रवेश हुआ, लेकिन पूरी तरह डिजिटल कार्यक्रमों का निर्माण व प्रसारण अभी कुछ दिनों के बाद ही हो सकेगा। स्टार टीवी चैनल का डिजिटल प्रसारण किया जाता है लेकिन वे केबिल प्रदाता द्वारा डीकोड किए जाते हैं, जो केबल के द्वारा हमारे टीवी तक सादृश संकेत भेजता है। आदर्श रूप में यह प्रसारण सीधे हमारे टीवी तक डिजिटल तरीके से पहुंचाया जा सकता है, जिससे हमें वीडियो सीडी के तरह की शानदार तस्वीर देखने को मिल सकती है। लेकिन वर्तमान टीवी सेट डिजिटल नहीं हैं जिससे वे सादृश संकेत ही प्राप्त कर सकते हैं। भविष्य में टीवी सेटों को डिजिटल बनाया जाएगा।

टीवी तस्वीर व ध्वनि के कुछ अनावश्यक भागों को छांटने की क्षमता के बिना डिजिटल टीवी बनाना संभव नहीं है। इसे 'कंप्रेशन' या संपीडन कहते हैं। संपीडन के द्वारा डिजिटल तस्वीरों को कांट–छांट कर छोटा कर दिया जाता है ताकि अनावश्यक दृश्यों को हटाया जा सके। इस तरीके से हमारे टीवी देखने के दौरान कोई बाधा भी नहीं आती, बल्कि संकेतों के साथ उनका प्रसारण आसान होता है। यह भी संभव है कि किसी स्टेशन के संकेतों को कई भागों में बांट सकता हैं इससे प्रत्येक डिजिटल केंद्र एक बड़े संकेत को अलग–अलग कई टीवी संकेतों या चैनलों में बांटा जा सकता है। इस प्रकार एक केंद्र से ही 2,3,4 या अधिक चैनलों का प्रसारण एक साथ ही किया जा सकता है। इसे मल्टीकास्टिंग' कहते हैं जिसमें एक साथ कई चैनलों के प्रसारण की क्षमता होती है। इसके द्वारा बच्चों के कार्यक्रम, दूरस्थ शिक्षा, कला व संस्कृति आदि के चैनलों का एक साथ प्रसारण किया जा सकता है, दर्शक अपने मनपसंद चैनल को चुनने के लिए स्वतंत्र होगा।

डिजिटल प्रौद्योगिकी के द्वारा प्रसारणकर्ता कुछ निश्चित कार्यक्रमों के साथ सामग्री भी भेज सकता है तथा दर्शक उन पूरक सामग्रियों के साथ स्क्रीन पर ही इंटरैक्शन कर सकते हैं। इसमें दर्शकों को यह भी सुविधा होगी कि वे इन पूरक सामग्रियों को अपनी इच्छानुसार देख सकें। ये सामग्रियां कार्यक्रम के साथ नहीं दिखेंगी, बल्कि टीवी स्क्रीन के कोने में एक छोटा संकेतक दिखाई देगा तथा एक विशेष रिमोट के जरिए दर्शक पूरक सामग्रियों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकेगी। उदाहरण के लिए दर्शक चल रहे टीवी कार्यक्रम को 'पॉज' करके स्क्रीन पर नयी सूचनाओं से जुड़ सकते हैं। जैसे प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं, संबंधित नक्शा देख सकते हैं या स्क्रीन पर ही एक कोने में संबंधित वीडियो देख सकते हैं। इस पूरक सामग्री का अधिकांश भाग आगे के उपयोग के लिए 'रिकार्ड' भी किया जा सकता है। पुनः इसे बार–बार उपयोग किया जा सकता है। इस सुविधा को 'डाटाकास्टिंग' कहते हैं।

डिजिटल चैनल डिजिटल डाटा का 19.39 मेगाबिट प्रति सेकंड की दर से धारा प्रवाहित करते हैं, जो टीवी सेट ग्रहण करते हैं। तथा डीकोड करते हैं। प्रत्येक प्रसारणकर्ता के पास एक डिजिटल टीवी चैनल के साथ ही कई सब चैनलों का प्रसारण कर सकता है।

प्रसारणकर्ता अपने द्वारा प्रसारित 19.39 मेगाबिट प्रति सेकंड (Mbps) के डिजिटल डाटा के प्रवाह का कई विभिन्न कार्यों के लिए उपयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए :

- प्रसारणकर्ता 19.39 एमबीपीएस पर सिर्फ एक कार्यक्रम प्रसारित कर सकता है।
- प्रसारणकर्ता अपने चैनल को कई भिन्न खंडों में बांट सकता है। इन खंडों को सब चैनल कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि चैनल 53 एक डिजिटल चैनल है तो 53.1, 53.2 तथा 53.3 इसके तीन सब चैनल होंगे। प्रत्येक सब चैनल पर अलग–अलग कार्यक्रम प्रसारित किया जा सकता है।

प्रसारणकर्ताओं को सब चैनलों के निर्माण की सुविधा इसलिए मिल जाती है, क्योंकि डिजिटल टीवी मानक कई विभिन्न फार्मेट की सुविधा प्रदान करता है। उदाहरण के लिए प्रसारणकर्ता तीन फार्मेट में से अपना चयन कर सकते हैं :

- 480 पी – तस्वीर 704× 44480 पिक्सेल की होती है, 60 पूर्ण फ्रेम प्रति सेकंड पर भेजी जाती है (480 आई भी संभव है)।
- 720 पी – तस्वीर 1280×720 पिक्सेल की होती है, 60 पूर्ण फ्रेम प्रति सेकंड पर भेजी जाती है।
- 1080 आई – तस्वीर 1920×1080 पिक्सेल की होती है, 60 इंटलेस पर भेजी जाती है।

एक डिजिटल टीवी एमपीईजी–2 संकेत को डीकोड करता है तथा एक कंप्यूटर मॉनीटर की भांति उसे अविश्वसनीय विभेदन तथा स्थिरता प्रदान कर प्रदर्शित करता है। एमपीईजी–2 (मोशन पिक्चर एक्सप्रेशन ग्रुप स्टैंडर्ड–2) मल्टिपल वीडियो व ऑडियो चैनलों के प्रसारण के लिए एक मानक है।

डिजिटल टेलीविजन एक ऐसा सेट होता है, जिससे टीवी देखने का बिल्कुल नया अनुभव प्राप्त होता है। इसमें हाई डेफिनिशन टेलिविजन (एचडीटीवी), इंटरेक्टिव टीवी, वेब टीवी तथा आंकड़ा प्रसारण की सुविधा होती है। डीजिटल टीवी में सराउंड साउंड ऑडियो, अत्यधिक स्पष्ट तस्वीरें, मानक स्पष्ट तस्वीरें, कई कार्यक्रमों की एक साथ मल्टीकास्टिंग तथा आंकड़ा प्रसारण सुविधा को भी शामिल किया जा सकेगा जिसे आस्पेक्ट रेशियो कहते हैं। वर्तमान एनालॉग आस्पेक्ट रेशियो 4:3 है। कई

डिजिटल टेलीविजनों में 16:9 का एनालॉग आस्पेक्ट रेशियो बनाया जा सकेगा जिससे थिएटर में फिल्म देखने के समान लगभग सारी विशेषताएं प्राप्त की जा सकेंगी।

एचडीटीवी (हाई डेफिनिशन टेलिविजन) भी एक डिजिटल टेलीविजन फार्मेट है जिससे उच्च गुणवत्ता का चित्र, सीडी के समान सराउंड साउंड ऑडियो तथा 16:9 का आस्पेक्ट रेशियों थिएटरों में देखे जाने वाले 35 एमएम की फिल्मों के समान विभेदन क्षमता के साथ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार एचडीटीवी कार्यक्रम आज के परंपरागत टीवी की तुलना में ऑडियो व वीडियो दोनों ही दृष्टियों से उन्नत होते हैं। वर्तमान समय में एचडीटीवी के लिए व्यापक रूप से दो मानक स्वीकृत हैं – 1080 आई (इंटलेस) तथा 720 पी (प्रोग्रेसिव)। ऐसा माना जाता है कि व्यावसायिक टेलीविजन प्रसारण के लिए एचडीटीवी मानक कई अनोखी विशेषताएं उपलब्ध करते हैं जैसे– शोर रहित, अत्यधिक स्पष्टता, चौड़ा स्क्रीन, कम आवृत्ति के उन्नत ऑडियो के साथ प्रोग्रेसिव स्कैन वीडियो डिस्प्ले आदि।

एसडीटीवी (स्टैंडर्ड डेफिनिशन टीवी) डिजिटल टीवी का एक अन्य प्रकार है। एसडीटीवी में प्रसारण डिजिटल रूप में होता है। अतः वर्तमान एनालॉग टीवी की तुलना में इसमें तस्वीर काफी चटक व स्पष्ट होती है। एसडीटीवी के फॉर्मेट में एचडीटीवी की तुलना में कम स्पेक्ट्रम का उपयोग किया जाता है अतः इस फॉर्मेट का उपयोग मल्टीकास्टिंग के लिए भी किया जा सकता है।

डिजिटल टीवी प्रसारण को चार तरीके से ग्रहण कर सकता है, प्रत्येक की अपनी एक अलग विशेषता है :

- **डिजिटल केबल टीवी** – डिजिटल केबल टीवी एक सेट टॉप बॉक्स द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है। आजकल के अधिकांश कोएक्सिएल केबल सिस्टम में 40 से 60 एनालॉग चैनलों के प्रसारण की सुविधा है। केबल सिस्टम को संपीडित डिजिटल वीडियो में बदलकर 500 से अधिक चैनलों का प्रसारण किया जा सकता है।
- **डिजिटल सैटेलाइट टीवी** – डिजिटल वीडियो संपीडन प्रौद्योगिकी तथा उच्च शक्ति वाले के–यू बैंड उपग्रहों के संयोजन से डिजिटल प्रसारण तंत्र द्वारा एक 18 इंच के डिश एंटीना पर 150 से अधिक चैनलों कासीधा प्रसारण किया जा सकता है। बढ़ी हुई चैनल क्षमता का उपयोग कई नयी सेवाएं जैसे वीडियो ऑन डिमांड, मूवी डिलीवरी, पे–पर–विव तथा दर्शकों के एक विशिष्ट वर्ग तक सीधे कार्यक्रम पहुंचाने आदि प्रदान की जा सकती है।
- **एरियल के द्वारा डिजिटल टीवी (टेरेस्ट्रियल ब्रॉडकास्ट)** – एनलॉग वीडियो व ऑडियो के प्रसारण के लिए टेरेस्ट्रियल ब्रॉडकास्ट सबसे पुराना व सफल तरीका है। डिजिटल टेरेस्ट्रियल टीवी एक सेट टॉप बॉक्स द्वारा प्रदान किया जा सकता है।
- **डिजिटल एडीएसएल टीवी** – डिजिटल एडीएसएल टीवी को एक मानक टेलीफोन लाइन के माध्यम से तीव्र गति से डिजिटल इंटरनेट के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है।

डिजिटल टीवी संभवतः नयी सहस्त्राब्दी का सबसे बड़ा बाजार होगा। अमेरिका के फेडरेशन कम्यूनिकेशंस कमिटी ने 2006 तक डिजिटल फार्मेट में पूर्णतया परिवर्तन को अनिवार्य बना दिया है। इसी प्रकार यूरोप, आस्ट्रेलिया तथा चीन में भी डिजिटल प्रसारण का परीक्षण किया जा रहा हैं। केबल टीवी डोमेन के डिजिटल में रूपांतरण 1998 में ही हो चुका हैं। वृहद गठजोड़ के एक सदस्य थॉमसन ने जनरल मोटर्स की सहायक कंपनी ह्यूग्स के साथ सफलतापूर्वक एक टीम बनायी है जो डिजिटल फार्मेट के एक स्वामित्व का उपयोग करते हुए प्रत्यक्ष प्रसारण उपग्रह के द्वारा 'डायरेक्ट टीवी' लांच करेगी। प्रसारण से प्राप्त डिजिटल संकेतों को परिवर्तित कर वर्तमान एटीएससी/पीएएल स्क्रीन पर ही देखने के लिए सेट टॉप बॉक्स का प्रयोग किया जाएगा।

भारत में सरकार डायरेक्ट टू होम (डीटीएच) सेवाओं के लिए एक मुक्त संरचना को लागू करने पर जोर दे रही है। सरकार ने भारत में के–यू बैंड में डीटीएच टीवी सेवा को अनुमति देने का निर्णय लिया है। डीटीएच का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे ग्रामीण क्षेत्रों में भी उपग्रह प्रसारण पहुंचाया जा सकता है जहां केबल लगाना कठिन होता है। डीटीएच के द्वारा डिजिटल की गुणवत्ता के संकेत प्राप्त होते हैं जिससे तस्वीर व ध्वनि की गुणवत्ता में कमी नहीं आती।

**डिजिटल टीवी रिसीवर के प्रकार :**

विभिन्न उपभोक्ता समूहों की जरूरतों के मुताबिक डिजिटल टीवी रिसीवर

कई प्रकार के होंगे। इनमें सबसे आम होगा सेट टॉप बॉक्स कन्वर्टर जो सभी 18 एटीएससी वीडियो फॉर्मेट को ग्रहण करेगा तथा उन्हें वर्तमान एनटीएससी/पीएएल सहित सभी प्रकार के टीवी के लिए उपयुक्त फार्मेट में परिवर्तित करेगा। प्रदर्शन उपकरण किसी भी आकार या आस्पेक्ट रेशियो का हो सकता है। दूसरे प्रकार का रिसीवर एक चोड़े स्क्रीन वाला डिजिटल होगा जिसका ऑस्पेक्ट रेशियो 16:9 का होगा। यह ट्यूनर कार्य को प्रदर्शन उपकरण के भीतर ही समाहित करेगा। पीसी/टीवी एक अन्य प्रकार होगा जो सभी डिजिटल वीडियो फार्मेट को प्राप्त करेगा तथा इसे पीसी मॉनीटर पर प्रदर्शित करेगा।

इलेक्ट्रॉनिक उपभोक्ता वस्तु की दुनिया में उपकरणों के दीर्घ जीवन का महत्व होता है, अतः संभावना यही है कि पहले दो प्रकार अधिक लोकप्रिय होंगे।

**लाभ :**

डिजिटल टेलीविजन के कई महत्वपूर्ण लाभ हैं। उपभोक्ताओं को डिजिटल टीवी कई तरीके से आकर्षित कर सकती है। परंपरागत टीवी की तुलना में इसमें लगभग दुगना क्षैतिज व उर्ध्वाधर विभेदन होगा। चौड़ा स्क्रीन तीव्र विभेदन तथा स्पष्ट प्रसारण से दृश्य सजीव जैसे लगेंगे। दूसरी तरफ, थिएटर के समान 3 डी ध्वनि के अलावा इसमें कई ऑडियो चैनलों को एक ही वीडियो के लिए मिक्स व मैच करने की सुविधा होगी।

सबसे महत्वपूर्ण यह है कि डिजिटल प्रौद्योगिकी टीवी को संकेतों के एक रिसीवर मात्र से अधिक परिष्कृत दो तरफा इंटरैक्टिव उपकरण में बदल देगी। इससे दर्शकों को निर्धारित परंपराओं कार्यक्रमों के ऑनलाइन प्रसारण की सुविधा तथा फिल्मों, खेलों, आंकड़ों तथा कार्यक्रमों की अपनी रुचि के अनुसार डाउनलोड कर सकने की सुविधा प्राप्त होगी। इस इंटरैक्टिव क्षमता का इलेक्ट्रॉनिक शॉपिग एक और उल्लेखनीय पहलू होगा। आंकड़ों के साथ वीडियो की मिक्सिंग के द्वारा डिजिटल टीवी एक शक्तिशाली संचार उपकरण होगा जिससे इंटरनेट तक पहुंच, ई–मेल तथा अन्य सेवाएं प्राप्त की जा सकेंगी। यह टीवी प्रसारणकर्ताओं को भी प्रभावित करेगी। इसमें प्रसारण के लिए कम आवृत्ति स्पेक्ट्रम की जरूरत होगी जिससे नए चैनलों के प्रसारण की लागत काफी कम हो जाएगी। डिजिटल टीवी से प्रसारणकर्ताओं को अतिरिक्त आय की प्राप्ति होगी क्योंकि इसमें भुगतान–प्रति उपयोग की व्यवस्था होगी। ये प्रसारणकर्ता इलेक्ट्रॉनिक शॉपिंग में वितरण चैनल की भूमिका के द्वारा भी काफी कमाई कर सकते हैं।

•••

# विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

## स्तन कैंसर जीन डी.एन.ए. हानि के सुधार में सहायक

यह अनुमान लगाया जा रहा है कि वर्ष 2002 के अन्त तक केवल अमेरिका में स्तन कैंसर के करीब 2 लाख नये मामले सामने आएंगे। महिलाओं में इस बीमारी के इतिहास से पता चलता है कि लगभग आधे मामले दो जीन क्रमशः बी.आर.सी.ए.1 (BRCA1) और बी.आर.सी.ए.2 (BRCA2) के परिवर्तन के फलस्वरूप घटित हुए। साइंस जर्नल में प्रकाशित नई खोज से पता चला है कि बी.आर.सी.ए.2 की प्रोटीन क्रिस्टल संरचना कैसी है, एवं किस प्रकार जीन परिवर्तन से ट्यूमर बनता है।

पिछले अनुसंधानों से यह पता लग चुका था कि डी.एन.ए. के सुधार में बी.आर.सी.ए.2 शामिल रहता है, परन्तु इसकी अभिक्रिया अस्पष्ट रही है। इस अध्ययन में शामिल मेमोरियल स्लोन केटरिंग कैंसर सेन्टर के निकोला पी. पेवलिच ने स्पष्ट किया कि बी.आर.सी.ए.2 की सामान्य क्रिया से यह समझना आसान होगा कि किस प्रकार प्रोटीन में परिवर्तन कैंसर के विकास में योगदान देता है। एक्स–रे क्रिस्टलोग्राफी की सहायता से कोलनेल युनिवर्सिटी के हूयान यांग और उनके सहयोगियों ने बी.आर.सी.ए. 2 की त्रिविम आकृति एकत्र की। इस टीम का मानना है कि प्रोटीन टूटे हुए डी.एन.ए को बांध सकता है और यह प्रक्रिया होमोलोगस रिकाम्बीनेशन कहलाती है – एक दुहरी जुड़ी लड़ी डी.एन.ए. के दोनों भागों को तोड़ देती है एवं उसी समय उसमें हुई हानि को पूर्ण कर देती है। जब यह घटना घटित नहीं होती है तो खराब डी.एन.ए. के कारण स्तन, अण्डाशय, पुरस्थ ग्रंथियों और अग्नाशय में ट्यूमर के विकास की संभावना बढ़ने लगती है।

**स्रोत : साइंटिफिक अमेरिकन, सितम्बर 2002**

## वर्ष 2002 के लिए नोबेल पुरस्कारों की घोषणा

इस वर्ष 2002 में भौतिकी, रसायन और फिज़ियोलॉजी या मेडिसिन के लिए निम्न व्यक्तियों को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किये जाने की घोषणा की गयी है :

### भौतिकी

**रिकार्डो गिआकोनी, मसतोषी कोशिबा और रेमण्ड डेविस**

''खगोल भौतिकी में उल्लेखनीय कार्य हेतु विशेषकर कास्मिक न्यूट्रीनॉस की खोज के लिए''

### रसायन विज्ञान

**कर्ट बुटरिच, कोइची तराका और जॉन बी. फेन**

''सूक्ष्म अणु–जैविकी के संरचनात्मक विश्लेषण को जानने एवं उसकी प्रक्रिया के विकास के लिए''

### फिज़ियालॉजी या मेडिसिन

**ब्रिटन्स सिडनी ब्रेनर, जॉन ई. सल्सटॉन और एच. रॉबर्ट हारविट्ज़,**

''अंग विकास में जीन की भूमिका एवं प्रोग्राम्ड सेल सुसाइड की प्रक्रिया के विकास के लिए''

(इस वर्ष के नोबेल पुरस्कारों पर विस्तृत जानकारी 'ड्रीम 2047'' के अगले अंक में प्रकाशित की जाएगी)

## वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस.आई.आर.) ने हीरक जयंती मनायी

भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अग्रणी संस्था वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सी.एस.आई.आर.) ने 26 सितम्बर 2002 को हीरक जयंती मनायी। इस परिषद की स्थापना सन् 1942 में की गयी थी। वर्तमान में इसके अधीन 40 प्रयोगशालाएं देश के विभिन्न भागों में स्थित हैं।

## मलेरिया जीनोम क्रमबद्ध

मलेरिया विश्व जनसंख्या के लिए निरंतर विपत्ति बना हुआ है। विशेषकर उप सहारा अफ्रीका जहां इस बीमारी से प्रत्येक 30 सेकण्ड में कम से कम एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। इस बीमारी के निर्मूलन के लिए 1950 और 1960 में किए गए प्रयास असफल रहे थे। वर्तमान में प्रयोग में लायी जाने वाली एन्टी मलेरिया ड्रग्स धीरे–धीरे अपनी प्रतिरोधक क्षमता खोती जा रही हैं। अभी हाल के ही अनुसंधानकर्ताओं ने मलेरिया परजीवी और उनके वाहक मच्छरों का जीनोम क्रमबद्ध कर दिया है। साइंस एवं नेचर जर्नल में प्रकाशित खोजों के अनुसार यह जानकारी इस बीमारी के निर्मूलन में सहायक होगी। लगभग 150 से अधिक वैज्ञानिकों की टीम ने परजीवी प्लाज्मोडियम फैल्सीपरम जो मलेरिया के लिए सहायक है, के जीनोम को खोजा है। इस विश्लेषण में लगभग छह वर्ष लगे जिसमें 14 क्रोमोसोम को चुना गया जो 5,300 जीन रखते हैं। इसमें 200 उस प्रकार के हैं जो पी. फैल्सीपरम प्रोटीन बनाते हैं और शरीर के प्रतिरक्षात्मक गुण को सुरक्षित रखता है। इनके व्यवहार जानने के लिए नयी एन्टी मलेरिया ड्रग्स बनाना आवश्यक है। चूंकि मलेरिया संचार में मच्छरों की भूमिका अहम् है अतः इस बीमारी के नियंत्रण के लिए मच्छरों को मार देना एक दूसरी विधि है। साइंस जर्नल में प्रकाशित अनुसंधान इसमें सहायक हो सकता है। कर्सीटियम ऑफ सिलेरा जीनोमिक्स रिसर्च ने एनाफिलीज गैम्वी के डी.एन.ए. को क्रमबद्ध कर दिया है। यह परजीवी मानव में मलेरिया फैलाने के लिए प्राथमिक स्रोत हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार यह जीनोम 278 मिलियन बेस लम्बे और लगभग 14000 जीनों को रखते हैं। वैज्ञानिकों ने इसके कार्य को जानने का कार्य प्रारंभ कर दिया है। विशेषरूप से वे यह खोज कर रहे हैं कि कौन सा जीन मादा मच्छर के काटने पर मृत या जीवित हो जाते हैं। निश्चित रूप से यह खोज मलेरिया निर्मूलन के लिए नया कीटनाशक या मलेरिया संचार रोकने की वैक्सीन बनाने में सहायक होगी।

**स्रोत : नेचर, अक्टूबर 2002**

## मेटसैट कक्षा में स्थापित

भारत ने एक बार पुनः अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी कार्यक्रम में अपनी क्षमता सिद्ध कर दी, जब उसने 12 सितम्बर, 2002 को श्रीहरिकोटा प्रक्षेपण केन्द्र से 1060 कि.ग्रा. भार वाले मौसम संबंधी विशिष्ट उपग्रह (मेटसैट) को भूतुल्यकालिक स्थानांतरण कक्षा (जीटीओ) में स्थापित कर दिया।

मेटसैट उपग्रह वैज्ञानिकों को मानसून एवं चक्रवात संबंधी भविष्यवाणी करने में उन्हें अधिक सक्षम बनाने में सहायक होगा। भारत के पास अभी तक इस प्रकार का मौसम संबंधी विशिष्ट उपग्रह नहीं था।

44.4 मीटर लम्बे और 295 टन भार वाले इस उपग्रह को चार चरण के ध्रुवीय उपग्रहयान पी.एस.एल.वी.–सी–4 (जो कि इस राकेट शृंखला का उन्नत रूप है) की सहायता से विविध मौसम संबंधी इस उपग्रह मेटसैट को कक्षा में भेजा गया। यह उपग्रह पृथ्वी से 36000 कि.मी. दूर एक अण्डाकार कक्षा में परिक्रमा के पश्चात पृथ्वी से 250 कि.मी. की ऊंचाई पर स्थापित हो गया है।

**स्रोत : पी.टी.आई., सितम्बर 2002**

**संकलन: कपिल त्रिपाठी**

• • •

# प्रोफेसर आशीष दत्ता से साक्षात्कार

नई दिल्ली के जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति तथा वर्तमान में 'नेशनल सेंटर फॉर प्लांट जेनोमिक रिसर्च', नई दिल्ली के निदेशक प्रो. आशीष दत्ता अब तक के सबसे कम वय के शांतिस्वरूप भटनागर पुरस्कार विजेता जीव-विज्ञानी हैं। यह पुरस्कार उन्हें 1980 में मिला था। एक चोटी के अणु जीव विज्ञानी प्रो. दत्ता आजकल कम प्रोटीन वाले अनाज एवं खाद्य फसलों में प्रोटीन की मात्रा तथा उसी गुणवत्ता को बढ़ाने की दिशा में शोध कर रहे हैं। ''ड्रीम 2047'' को स्वतंत्र रूप से दिए गए एक साक्षात्कार में प्रो. दत्ता ने उनके द्वारा किए जाने वाले नवीन शोध कार्यों तथा जीनांतरित (जेनेटिकली मॉडीफाइड) फसलों आदि के बारे में बातचीत की। प्रस्तुत है इसी बातचीत का सार :

## प्रो. दत्ता द्वारा किए गए पूर्व शोध कार्य

पी-एचडी. के लिए किए गए मेरे शोध कार्य द्वारा जानवरों के ऊतकों में अमीनोशर्करा के उपापचय में एलोस्टेरिक नामक एंजाइमों की भूमिका के बारे में पहले-पहल जानकारी हासिल हुई। मेरे इस कार्य की मान्यता के रूप में 'मैथर्ड्स ऑफ एंजाइमोलॉजी' में दो शोध पत्र लिखने का निमंत्रण मुझे प्राप्त हुआ। कोलकाता के बोस इंस्टीट्यूट से पी-एचडी. का कार्य पूरा करने के बाद न्यूयार्क के पब्लिक हैल्थ रिसर्च इंस्टीट्यूट में चोटी के विषाणुविज्ञानी रिचर्ड फैंकलिन के साथ रिसर्च एसोसिएट के पद पर कार्य करने के लिए 1968 में मैं अमेरिका चला गया। वहां मैंने लिपिड युक्त विषाणुओं पर कार्य किया। इसके बाद 1971 में मैं लॉस एंजिल्स स्थित कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय चला गया जहां मैंने दो वर्ष सहायक विषाणु विज्ञानी (सहायक प्रोफेसर के पद के समतुल्य) के पद पर कार्य किया।

अमेरिका प्रवास के दौरान मैंने अणु जीवविज्ञानी के उस समय के मुख्य शोध विषयों पर कार्य किया। मसलन, वृहद् अणुओं के व्यवहार को समझाने के लिए मैंने लिपिड-आवृत्त दोहरे रज्जु वाले डीएनए जीवाणुज विषाणु (बेक्टिरीयल वाइरस) पी एम 2 को एक प्रतिरूप प्रणाली (मॉडल सिस्टम) रूप में लिया। इस जीवाणुभोजी तथा इसकी परपोषी कोशिका पर किए गए विशद अनुसंधानों द्वारा परपोषी कोशिका झिल्ली में हुए परिवर्तनों के चलते विषाणुक (वाइरस) आवरण का संश्लेषण तथा झिल्ली के विशिष्ट संदर्भ में नए बनने वाले जीवाणुभोजियों (विरिऑन) की संरचना के बारे में भी महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुए। संरचनात्मक प्रोटीन के रूप में इस जीवाणुभोजी में नायाब आरएनए पॉलिमरेस की उपस्थिति एक ऐसी खोज की जिसके द्वारा पहले-पहल एक जीवाणुज विषाणु के अंदर पाए जाने वाले एंजाइम के बारे में पता चला।

1973 में मैंने भारत लौट आने का निश्चय किया। मुम्बई स्थित भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, कोलकाता विश्वविद्यालय तथा बोस संस्थान, जिसके साथ मेरा पुराना नाता था, के रूप में मेरे सामने कई विकल्प खुले थे। लेकिन इन सबसे अलग मैंने नई दिल्ली के जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, जो उन दिनों एक उभरता हुआ नाम था, के साथ जुड़ने का फैसला किया। मार्च 1973 में मैं इस विश्वविद्यालय में चला आया। यहां मैंने यूकैरयोटिक कोशिकाओं में जीनों की अभिव्यक्ति या उनके मुखरित होने की प्रक्रिया पर कार्य आरंभ किया। गौरतलब है कि यूकैरयेटिक की रचना कोशिका या कोशिकाओं से होती है जिनमें आनुवंशिक पदार्थ डीएनए गुणसूत्र (क्रोमोसोम) के रूप में मौजूद होता हैं इस काम के लिए मैंने खमीर (यीस्ट) को चुना क्योंकि न केवल यह स्वयं तेजी से विभाजित होता हुआ वृद्धि करता है बल्कि जीवाणुओं के संवर्धन के लिए भी यह एक उत्तम माध्यम का कार्य करता है। लेकिन यहां भी आम तौर पर प्रयुक्त होने वाले **सैकरोमाइसीज** यीस्ट के स्थान पर कॅडिडा अल्बिकेंस नामक मानव रोगजनक यीस्ट, जो प्रतिरोध शक्ति के क्षीण हो जाने पर मनुष्यों के लिए जानलेवा साबित हो सकता है, को ही मैंने अपने शोधकार्य के लिए चुना। सी. अल्बिकेंस पर किए गए हमारे शोध ने इसकी रोगजनकता के आण्विक आधार को समझने में काफी मदद की। **इस यीस्ट में प्रेरित किए जा सकने वाले एन-एसिटाइलग्लूकोसामीन अपचयी (कैटाबोलिक) प्रक्रम की खोज के अलावा** हमें यह पता लगाने में भी सफलता मिली कि इस प्रक्रम में शामिल सभी जीन गुच्छों के रूप में ही होते हैं। जीवित प्राणियों में जटिल कार्बनिक यौगिकों के सरल यौगिकों में विघटित होने की प्रक्रिया ही अपचय (फैटोबोलिज्म) कहलाती है। इस उपचयी प्रक्रिया में भाग लेने वाला एन-एसिटाइलग्लूकोसामीन एक अमीनोशर्करा ही है।

प्रो. आशीष दत्ता

1975 में पादपों में प्रोटीन संश्लेषण की मूल क्रियाविधि का पता लगाने का विचार मेरे मन में उपजा। हमेशा से ही मेरा यह मानना रहा है कि किसी भी मुख्य क्षेत्र में शोधकार्य शुरू करने से पूर्व उस क्षेत्र विशेष का पूरा ज्ञान अर्जित कर लेना चाहिए। इसके बाद 1976 में नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. सेवेरो ओकोआ की प्रयोगशाला में सवा साल के लिए कार्य करने के लिए मैं अमेरिका चला गया। हमारे शोध कार्य द्वारा यह साफ तौर पर उद्घाटित हुआ कि यूकैरयोटिक कोशिकाओं में प्रोटीन संश्लेषण का उपक्रमण (इनिसिएशन) उपक्रमण कारक के फॉस्फेटीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी कार्बनिक यौगिक या किसी अणु में फॉस्फेट समूह का प्रवेश कराया जाता है।

इस तरह पहली बार किसी नए उपक्रमण कारक की भूमिका को स्थापित करने में हमें कामयाबी मिली। हमारे द्वारा किया गया एक और महत्वपूर्ण कार्य पादप भ्रूण के विकास से संबंधित थां हमने पाया कि भ्रूण की सृष्टि के दौरान कुछ संदेशवाहक (एम) आरएनए अणुओं की उत्पत्ति होती है जो अंकुरण के समय इस्तेमाल के लिए संचित कर जिस जाते हैं। इन संचित एम आरएनए अणुओं का संदेशों में रूपांतरण की नियंत्रण प्रक्रिया को समझने के मेरे प्रयासों से दो ऐसे यौगिकों – प्रोटीन काइनेस तथा कम आण्विक भार वाले एक आरएनए अणु – की खोज संभव हुई जो इस रूपांतरण प्रक्रिया को बाधित करते हैं।

अस्सी के दशक के मध्य भाग में अपने वैज्ञानिकों शोधों के संभावित अनुप्रयोगों का लेखा-जोखा लेने का हमने फैसला किया। जैव रसायन में मेरे मूल प्रशिक्षण तथा अणु जीवविज्ञानी में वर्षों किए गए शोध-अध्ययनों द्वारा अर्जित मेरे ज्ञान ने पादप जीन की क्लोनिंग के शुरुआती शोध में मेरी बहुत मदद की। पादप में तो एक भरी-पूरी प्रणाली मौजूद होती है। लेकिन हमारे सामने मुख्य चुनौती कम प्रोटीन युक्त फसल पादपों में प्रोटीन की मात्रा तथा उसकी गुणवत्ता को बढ़ाने की थी। उदाहरण के लिए, हमारे देश में लोकप्रिय चावल और मक्के की फसलों में प्रोटीन की मात्रा बहुत कम होती है। ऊपर से इस प्रोटीन का पोषक मान भी अत्यधिक न्यून होता है। हमें एक ऐसे जीन की तलाश थी जो ऐसे प्रोटीन को कोडित कर सके जिसमें उपयोगी अमीनो अम्ल प्रचुर मात्रा में मौजूद हों। गौरतलब है कि अमीनो अम्ल वनस्पति एवं जंतु ऊतकों में पाए जाने वाले वे कार्बनिक यौगिक होते हैं जो प्रोटीनों के मुख्य संघटक होते हैं। ऐसे में एमरेंथस के बीजों, जिनें अमीनो अम्लों की बहुलता होती है, की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित हुआ। यह तो महज शुरुआत थी। इसके बाद एमरेंथस के बीजों से हमने एएमए1 नामक जीन पृथक किया और फिर इस जीन को कई खाद्य फसलों में प्रविष्ट कराने का हमने प्रयास किया।

एक और समस्या जिसने उस समय हमारा ध्यान आकर्षित किया वह था कई सब्जियों और फसलों में आक्जेलिक अम्ल का पाया जाना। हमारे रक्त प्रवाह

में विद्यमान कैल्शियम, आयरन तथा जिंक के साथ संयोजित होकर यह अम्ल गुर्दे की पथरी को जनम देता है। आक्जेलिक अम्ल टमाटर और पालक सहित करीब 40 फसलों में पाया जाता है। हमने महसूस किया कि अगर इन फसलों को आक्जेलिक अम्ल मुक्त करने में हमें कामयाबी मिल सके तो गुर्दों को खराब होने से बचाने का एक माकूल उपाय हमें हासिल हो सकता है। गौरतलब है कि गुर्दे खराब हो जाने पर या तो जीवन भर डायलिसिस के आसरे रहना पड़ता है या फिर गुर्दा प्रत्यारोपण कराना पड़ता है और ये दोनों ही जेब पर भारी पड़ने के कारण आम भारतीय की पहुंच से अमूमन बाहर होते हैं। अपने अनुसंधानों द्वारा एक खाद्य कवक से आक्जेलेट डीकार्बोक्सीलेस (ओ एक्स डी सी) नामक जीन को पृथक करने में भी हमें सफलता मिली।

## शोध संबंधी उनके वर्तमान रुचि के विषय

सी. अल्बिकेंस और एमरेंथस से पृथक किए गए जीन तथा कॉलीविदा वेलुटाइप्स नामक खुम्बी पर हमारे शोध–अध्ययन चल रहे हैं। ए एम ए4 तथा ओ एक्स डी सी जीनों पर चार अमेरिकी पेटेंट मैंने पहले ही प्राप्त कर लिए हैं। पराबीनी आलू तथा टमाटर पर क्षेत्र–परीक्षण लगभग पूरे कर लिए गए हैं। जबकि ए एम ए 1 जीन द्वारा विकसित प्रोटीन बहुल पराजीनी आलू की किस्म के क्षेत्र–परीक्षण अब अंतिम दौर में हैं, आक्जेलिक अम्ल मुक्त टमाटर की फसल भी व्यापारिक तौर पर बाजार में उतारे जाने की हरी झंडी के इंतजार में है। जीनांतरित आलू पर क्षेत्र परीक्षण शिमला के केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान के साथ मिलकर किए जा रहे हैं।

इसी तरह चावल, कैसावा तथा शकरकंदी की फसलों में ए एम ए 1 जीन को प्रविष्ट कराए जाने पर हम कार्य कर रहे हैं। इन फसलों में प्रोटीन की एक प्रतिशत जितनी मामूली बढ़ोतरी भी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी। हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय तथा बंगलैर स्थित 'यूनिवर्सिटी ऑफ एगरीकलचरल साइंसेस' के साथ चावल पर कार्य करने के लिए, जबकि तिरुअनंतपुरम स्थित 'सेंट्रल ट्यूबर रिसर्च इंस्टीट्यूट' के साथ शकरकंदी तथा कैसावा की प्रोटीन–बहुत पराजीवी किस्मों के परीक्षण के लिए हमने उनके साथ (नेटवर्किंग द्वारा) अपना ताना–बाना जोड़ा हुआ है। सब्जियों के खराब होने की प्रक्रिया को धीमा कर उनके भंगरण समय को बढ़ाने में सक्षम एक ऐसे जीन की पहचान कर उसे अलग करने में भी हमें सफलता मिली है जिसके लिए पेटेंट की अर्जी शीघ्र ही दिए जाने की संभावना है।

सी. अल्बिकेंस नामक यीस्ट पर भी हमारा शोध कार्य जारी है। यह रोगजनक कवक, जो अमीनोशर्करा – बहुल मानव श्लेष्मलीय (म्यूकोसल) पृष्ठों पर अपनी बस्ती बसा कर उन पर फिर धावा बोल देता है, द्वितीयक संक्रमण के लिए जिम्मेदार होता है। गौरतलब है कि ह्यूमन इम्यूनोडेफिसिएंसी वाइरस (एचआईवी) द्वारा उत्पन्न एड्स रोग ने द्वितीयक संक्रमणों को काफी कुख्यात बना दिया है। हमें न केवल सी. अल्बिकेंस के अपचयी प्रक्रम का पता लगाने में बल्कि इस प्रक्रम में बाधा उत्पन्न करने में भी सफलता मिली है ताकि इस कवक को अनुग्र किया जा सके। यह कार्य पिछले 28 वर्षों से चल रहा है। इससे महत्वपूर्ण चिकित्सीय लाभ मिलने की पूरी संभावना है।

## पराजीनी फसलों का विकास

पराजीनी फसलों का विकास अनेक तरीकों से किया जा सकता है। एक तरीका तो खाद्य स्रोतों से प्राप्त जीनों का इस्तेमाल है जबकि अन्य तरीकों में अखाद्य पादपों एवं सूक्ष्मजीवों से प्राप्त जीनों का प्रयोग शामिल है। हमारी प्रयोगशाला में खाद्य स्रोतों से प्राप्त जीनों के प्रयोग द्वारा गढ़ी जाने वाली जीनांतरित (जेनेटिकली मॉडीफाइड) फसलों के विकास पर बल दिया जा रहा है। ऐसी फसलों को काफी निरापद माना जा रहा है हालांकि अन्य स्रोतों से प्राप्त जीनों के प्रयोग द्वारा गढ़ी जाने वाली पराजीनी किस्मों के इस्तेमाल में सावधानी बरते जाने की जरूरत है। लेकिन इसका आशय यह नहीं कि भारत को जीनांतरित फसलों के विकास की ओर से आंख मूंद लेना चाहिए। बल्कि खाद्य और पोषण–सुरक्षा की दृष्टि से ऐसी फसलों का विकास भारत के लिए महत्वपूर्ण ही होगा।

बी टी कपास के सीमित परीक्षणों की मंजूरी भी दी जा चुकी है। दरअसल, ऐसी फसलों की जैव–निरापदता के मानीटरन और मूल्यांकन के लिए भारत के पास एकदम स्पष्ट नीति उपलब्ध है। मैं स्वयं भी जैव–प्रौद्योगिकी विभाग (डीबीटी) द्वारा स्थापित 'रिव्यू कमेटी ऑन जेनेटिक मेनिपुलेशन' (आर सी जी एम) का कई वर्ष अध्यक्ष रह चुका हूं।

## देश में जैव प्रौद्योगिकी संबंधी शिक्षा

देश में जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मानवशक्ति के विकास की दिशा में बायोटेक्नालॉजी विभाग (डीबीटी), विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) तथा विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) का अनुपम योगदान रहा है। लेकिन अगर आप मुझसे यह पूछेंगे कि क्या जैव–प्रौद्योगिकी संबंधी शिक्षा को और भी व्यापक बनाकर स्नातक स्तर पर अन्य विश्वविद्यालयों (जहां यह शिक्षा अभी नहीं दी जा रही है) में भी चालू किया जाए तो मेरा उत्तर नहीं में होगा। इसकी मूल वजह यह है कि जैव–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में शिक्षा एवं अनुसंधान के लिए प्रचुर धनराशि की आवश्यकता पड़ती है जिसे मैं समझता हूं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) फिलहाल प्रदान करने की स्थिति में नहीं है। नतीजतन जैव–प्रौद्योगिकीय अध्ययनों के लिए अधिकतर विश्वविद्यालयों में उपलब्ध सुविधाएं खस्ता हाल में ही हैं। व्यक्तिगत तौर पर मेरा यह मानना है कि स्नातक एवं स्नातकोत्तर दोनों ही स्तरों पर जीव विज्ञान, जैव रसायन तथा अणु जीव विज्ञान जैसे विषयों पर अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान किया जाना अधिक महत्वपूर्ण है। इन विषयों का गूढ़ ज्ञान जैव–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान के लिए बहुत उपयोगी साबित होगा।

**प्रस्तुति : टी.वी. जयन**

## संपादक के नाम पत्र

''ड्रीम 2047'' का प्रकाशन सचमुच प्रशंसनीय है। विज्ञान में रुचि रखने वाले गंभीर पाठकों के लिए तो यह पठनीय एवं संग्रहणीय है ही – विद्यार्थियों व अन्य लोगों के लिए भी इस छोटी सी पत्रिका में महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध रहती हैं। मेरे एक प्रिय लेखक ने पिछले दिनों मुझे ''ड्रीम 2047'' पत्रिका से अवगत कराया। सितम्बर 2002 अंक में 'विज्ञान का इतिहास' स्तंभ के अंतर्गत 'मेरी क्यूरी' के बारे में सुबोध महंती ने अपना आलेख अनेक नवीन जानकारियों व तथ्यों को समेटते हुए बहुत मेहनत से लिखा है और इसका प्रकाशन भी आप लोगों ने बहुत सुंदर ढंग से किया है। वैसे पूरी पत्रिका में ही रंगों और चित्रों का कलात्मक संयोजन देखने को मिलता है – जिसके लिए आप सभी बधाई के पात्र हैं। 'तीखा मसाला', 'नेहरू तारा मंडल' के बारे में विस्तृत जानकारी, 'डॉ. एस. जेड कासिम के साथ भेंटवार्ता' तथा 'कहानी एक कीट वैज्ञानिक की – सभी रचनाएं पठनीय व सार्थक लगीं। हां, 'नए क्षितिज' स्तंभ को एक या पूरे दो पन्नों का कर सकते हैं – इससे पाठकों को विज्ञान से जुड़ी नई–नई खोजों आदि के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

पत्रिका जिस रूप में प्रकाशित हो रही है – यही सर्वोत्तम है। हिन्दी–अंग्रेजी दोनों भाषाओं में एक साथ होने के कारण यह पत्रिका अधिक से अधिक लोगों के बीच अपनी बात पहुंचा पाने में सक्षम है – साथ ही अंग्रेजी भाषी लोगों के बीच हिन्दी को पहुंचाने का एक अतिरिक्त महत्वपूर्ण काम इस पत्रिका के माध्यम से आप लोग, बिना शोर मचाए, बिना किसी तामझाम के, कर रहे हैं – यह हिन्दी की बहुत बड़ी सेवा है।

**श्याम सुशील**

**ए–13, जनयुग अपार्टमेंट्स, वसुंधरा एनक्लेव, दिल्ली–96**